व्यंग-कौतुक

मूल-लेखक
डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२८

द्वितीयावृत्ति] [मूल्य ॥)

सूची

व्यंग-कौतुक

परिहास का परिणाम

और कुछ नहीं, मासिकपत्र में हमने एक बड़े कुतूहल का निबन्ध लिखा था। उसे पढ़कर हमारे अन्तरङ्ग मित्र तो हँसे ही, विपक्षी भी ख़ूब हँस रहे हैं।

कानपुर, बनारस और आज़मगढ़ से तीन पाठकों ने उस निबन्ध का अर्थ पूछा है! उनमें एक ने शिष्टता को स्थान देकर अनुमान किया है कि इसमें छापेख़ाने की ग़लती है; दूसरे ने अनावश्यक सहृदयता-वश लेखक की मानसिक अवस्था पर आशङ्का के साथ खेद प्रकट किया है; तीसरे सज्जन अनुमान और आशङ्का दोनों को पार कर गये हैं। उनके लिए वास्तव में हमीं उत्कण्ठित हैं।

श्रीयुक्त शिवनाथ जोशी साहबगञ्ज से लिखते हैं—गोविन्द-प्रसाद के इस निबन्ध का अभिप्राय क्या है? इससे क्या सन्थाल परगने की जङ्गली जातियों का दुःख दूर होगा? देश में जो इतने लोगों को पागल कुत्ते काटते हैं क्या इस निबन्ध

में उसका कोई इलाज लिखा गया है ? नहीं तो ऐसे लेख से क्या फल है ?

"अज्ञानतिमिर-निवारिणी" पत्रिका में उक्त निबन्ध की समालोचना में लिखा गया है—यदि गोविन्द बाबू सचमुच हो समझते हैं कि देश में धान के खेतों में जूट बोने से किसानों की दशा की उन्नति हो रही है तो उनके निबन्ध के साथ हमारा मत नहीं मिलता। यदि उनके कहने का यह आशय हो कि जूट की खेती छोड़कर धान की ही खेती करना अच्छा है तो यह बात भी सर्वथा ग्राह्य नहीं। उनका सिद्धान्त क्या है, निबन्ध से इसका निर्णय करना कठिन है।

कठिन अवश्य है, क्योंकि जूट की खेती के सम्बन्ध में हमने कोई बात नहीं कही है।

'बुद्धिप्रकाश' में लिखा है—लेख के भाव और ध्वनि से ज्ञात होता है कि बाल-विधवा के दुःख से दुखी होकर लेखक ने हम लोगों को रुलाने की चेष्टा की है। परन्तु रोना तो दूर रहा, लेख के शुरू से अख़ीर तक हम हँसी नहीं रोक सके।

हँसी न रोक सकने के लिए हम सर्वथा उत्तरदायी हैं, किन्तु उन्होंने भाव और ध्वनि से जो कुछ समझा था वह उनकी समझ की ख़ूबी थी। संशोधनी नामक साप्ताहिक पत्रिका ने लिखा है—"हरिदासपुर की म्युनिसिपैलिटी के विरुद्ध गोविन्द बाबू का जो सुगम्भीर निबन्ध प्रकाशित हुआ है, वह बड़ा ही विशद और उत्तेजना-पूर्ण हुआ है, इसमें सन्देह

नहीं; किन्तु एक बात से हमें दुखी और आश्चर्यान्वित होना पड़ा है। उन्होंने दूसरे की बात बड़ी सुगमता से अपनी कह-कर लिखी है। एक जगह कहा है, 'जन्म लेने पर मृत्यु अवश्य होती है।' यह विलक्षण भाव यदि ग्रीक पण्डित साक्रेटीज़ के ग्रन्थ से न चुराते तो हम लेखक की प्रशंसा किये बिना नहीं रहते। नीचे हम और भी चोरी के बहुत से माल का नमूना देते हैं—गिबन ने कहा है 'राज्य में राजा न हो तो जन-समूह में विशृङ्खला होती है।' गोविन्द ने लिखा है—'एक तो अराजकता, उस पर अनावृष्टि—गण्डस्योपरि विस्फोटकम्।' संस्कृत श्लोक भी कालिदास के ग्रन्थ से अपहृत हुआ है!

रस्किन में एक वर्णन है—"आकाश में पूर्णचन्द्र का उदय हुआ है, समुद्र के जल में उसकी चाँदनी झिलमिला रही है।" गोविन्द बाबू ने लिखा है—'पञ्चमी के चाँद का प्रकाश रामधन बाबू के गञ्जे सिर के ऊपर लहलहा रहा है।' कैसी अद्भुत चोरी है! क्या अद्भुत प्रतारणा है!! क्या अपूर्व दुःसाहस है!!!

'संवाद-सार' कहता है—रामधन बाबू और कोई नहीं, क़न्नौज के श्यामाचरण त्रिवेदी हैं। श्यामाचरणजी का सिर गञ्जा नहीं है। किन्तु हमने खोज करके जाना है कि उनके मझले भतीजे के सिर के बाल कुछ-कुछ उड़ने लगे हैं। इस तरह व्यक्तिगत आक्षेप करना अत्यन्त निन्दनीय है।

हमें स्वयं यह बात खटकती है। हमारा निबन्ध हरिदास-पुर की म्युनिसिपैलटी के विरुद्ध लिखा गया है, इस सम्बन्ध

में "संशोधनी" की युक्ति तो किसी तरह काटने योग्य नहीं है। हरिदासपुर युक्त प्रदेश में है या विहार में, चीन में है या तिब्बत में, हमें कुछ मालूम नहीं। वहाँ म्युनिसिपैलिटी है या थी, या होगी, यह स्वप्न में भी हमारा जाना-समझा नहीं।

दूसरी बात यह कि, हमने अपने प्रबन्ध में क़न्नौज के श्यामाचरण त्रिवेदी महाशय के प्रति अनुचित कटाक्ष किया है,--इस सम्बन्ध में भी सन्देह करना कठिन है। 'संवाद-सार' ने ऐसा पक्का सुबूत ढूँढ़ निकाला है कि उसमें सुई का समावेश होने की भी सम्भावना नहीं। हम एक व्यक्ति को पहचानते हैं, किन्तु वह बेचारा त्रिवेदी नहीं, वाजपेयी है; और उसका घर क़न्नौज में नहीं, फ़तहपुर में है। उसके भतीजे के सिर में गञ्ज रोग होने की बात तो दूर रही, उसके एक भी भतीजा नहीं। दो भानजे अवश्य हैं।

जो लोग कहते हैं कि हमने कोयले की खान के मालिकों की कालिमा के साथ कोयले की तुलना की है, वे यदि कृपा करके सब खुलासा हाल लिख भेजें कि उक्त खान अब है या नहीं और है तो कहाँ है तथा किस दशा में है, तो खान के गूढ़ रहस्य के सम्बन्ध में हमारी अज्ञता दूर हो। जो जिसके जी में आवे कहे. "नमक के महसूल", "विधवा-विवाह" और "गाय के घी" के सम्बन्ध में हमने कुछ भी नहीं लिखा है यह बात हम शपथ-पूर्वक कह सकते हैं।

इधर घर में भी बखेड़ा मचा है। गम्भीर चिन्ताशीलता का परिचय देते हुए हमने एक जगह लिखा था "यह जगत् पशु-शाला है।" हमारी धारणा थी कि पाठक यह पढ़कर हँसेंगे। परन्तु पाठकों में तीन व्यक्ति नहीं हँसे, इसका हमें सुबूत मिल गया है। प्रथम तो साले ने आकर हमें गाली दी। उसने कहा, सचमुच उसी को पशु कहा गया है; हमने कहा—"कहने में कोई दोष न था परन्तु हम तुम्हारी क़सम खाकर कहते हैं, हमने तुम्हें पशु नहीं कहा है।" भाई के अपमान से खिसियाकर ब्राह्मणी पिता के घर जाने की धमकी दे रही है। इस डिविज़न में पशुपति बाबू एक ज़मींदार हैं। वे मारे क्रोध के अलग ही मुँह फुला रहे हैं। वे कहते हैं कि उन्हें साला कहकर हमने बड़ी ढिठाई की है। जन-समाज में वे हमारे विरुद्ध जो आलोचना कर रहे हैं वह सुनने योग्य नहीं। इधर प्रतापगढ़ के जगत् बाबू चाय पीते-पीते हमारा निबन्ध पढ़कर बेतरह हँस रहे थे। इसी समय ज्योंही पढ़ा "जगत् पशु-शाला" त्योंही हँसी का वेग सहसा रुक जाने से उनके कण्ठ में चाय अटक गई। वे बेहोश होकर हिचकने लगे। उनकी यह दशा देख लोग घबरा गये। कितनों ही ने सोचा, डाक्टर आने तक ये बचें तो बचें।

महल्ले भर के सभी लोगों की धारणा है कि हमने अपने प्रबन्ध में उन्हीं लोगों के परम पूजनीय ज्येष्ठ भाई, ससुर या बहनोई के सम्बन्ध में एक न एक सच्ची बात पर आक्षेप

किया है। वे भी हमारे सिर की पगड़ी पर कुटिल कटाक्ष करेंगे, ऐसी बातें कह रहे हैं। असल में निबन्ध का मतलब क्या है, इस सम्बन्ध में वे हमारी बात का विश्वास नहीं करते। किन्तु हमारे सम्बन्ध में इनका अभिप्राय क्या है, इस विषय में उनकी बात पर अविश्वास करने का हमें कोई कारण नहीं। बल्कि उनकी बात उत्तरोत्तर ख़ूब दृढ़ होती जा रही है। निश्चय किया है, स्थान बदलना पड़ेगा। अपनी रचना की भाषा भी बदलना आवश्यक है। निबन्ध में चाहे जो विषय लिखेंगे, परन्तु अब किसी को हँसाने की चेष्टा नहीं करेंगे।

बड़े चींटों का मन्तव्य

देखो, देखो, चींटियों को देखो! सभी कैसी छोटी-छोटी हैं, क़तार बाँधकर सैकड़ों इधर-उधर घूम रही हैं। ये सभी चींटियाँ हैं। संस्कृत भाषा में इन्हें पिपीलिका कहते हैं। मैं चींटा हूँ। बहुत ऊँचे चींट-कुल में मेरा जन्म हुआ है। इन चींटियों को देखकर मुझे बड़ी हँसी आती है।

हाः हाः हाः! इनकी सूरत-शकल तो देखो, कैसे चल रही हैं। धरती में बिलकुल सटी हुई मालूम होती हैं! मैं जब खड़ा होता हूँ तब मेरा सिर आकाश में लग जाता है, यदि सूर्य मिसरी का गोला होता तो मैं समझता हूँ कि मैं उसे अनायास हाथ बढ़ाकर तोड़-तोड़ लाता और उससे

अपना घर भरता। मैं इतना बड़ा तिनका खींचकर कहाँ से कहाँ ले आया हूँ। इनको देखो, ये क्या कर रही हैं। एक मरे भुनगे के पीछे पड़ी हैं। तीन चार मिलकर खींचा-तानी करती हैं तो भी कृतकार्य नहीं होतीं! हमारे इनके बीच इतना फ़र्क़! सच कहता हूँ, देखने से मुझे बड़ा कौतुक मालूम होता है।

मेरी टाँग देखो और इनकी देखो। जहाँ तक नज़र दौड़ाकर देखता हूँ, मैं अपनी टाँग का अन्त नहीं देख पाता—इतनी बड़ी टाँग है। इससे बढ़कर पद-मर्यादा की आशा और क्या की जा सकती है। किंतु चींटियाँ अपने छोटे-छोटे पदों से ही बड़ी सन्तुष्ट हैं! देखकर आश्चर्य होता है। हज़ार हों, हैं तो चींटियाँ ही न!

एक तो यह आपही छोटी हैं, उस पर फिर मैं बहुत ऊपर से इन्हें देखता हूँ। इस कारण इनकी नज़र मुझ तक नहीं पहुँचती। किन्तु मैं अपने बहुत लम्बे छः पैरों से खड़ा होकर कनखियों से इनकी ओर एक बार देखकर भी इनका आगा-पीछा सब जान लेता हूँ। क्योंकि चींटी इतनी छोटी होती है कि उसको देख लेने में बहुत देर नहीं लगती। मैं चींटी जाति के सम्बन्ध में चींट-भाषा में एक किताब लिखूँगा और वक्तृता भी दूँगा।

मैंने चींटी-समाज के सम्बन्ध में विस्तृत अनुमान द्वारा बहुत अभिज्ञता प्राप्त की है। हम लोगों में सन्तान-स्नेह है, इसलिए यह चींटियों में नहीं हो सकता। क्योंकि वे चींटियाँ

हैं, और निरी छोटी चींटियाँ हैं। सुना है, चींटियाँ मिट्टी खोद-खोदकर घर बनाती हैं—स्पष्ट ही मालूम होता है कि उन्होंने चींटा जाति से गृह-निर्म्माण-विद्या सीखी है। क्योंकि वे चींटियाँ हैं—साधारण चींटियाँ—संस्कृत भाषा में जिन्हें पिपीलिका कहते हैं।

चींटियों को देखकर मुझे बड़ी दया लगती है। इनका उपकार करने की मेरी इच्छा बहुत बलवती हो उठी है। मैं तो यहाँ तक चाहता हूँ कि कुछ दिन के लिए अपने सभ्य समाज को छोड़कर, दल के दल चींटा-भ्रातृवृन्द को साथ लें, चींटियों के घर जाकर डेरा डालूँ और उनके संस्कार-कार्य में व्रती हो जाऊँ। मैं इतना त्याग स्वीकार करने को प्रस्तुत हूँ। उनके संगृहीत चीनी के कणों को घोंटकर और उनके बिल में हाथ-पैर मोड़कर किसी तरह जीवन बिताने को हम लोग राज़ी हैं। यदि इससे भी चींटी-जाति कुछ उन्नत हो तो हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे।

वे उन्नति नहीं चाहतीं—वे अपनी चीनी आपही खाना और अपने बिल में आपही रहना चाहती हैं—इसका कारण यही है कि वे क्षुद्र चींटियाँ हैं। किंतु जब कि हम चींटे हैं तब हम उनकी उन्नति का यत्न करेंगे ही। उनकी चीनी हम खायँगे और उनके बिल में अवश्य निवास करेंगे! हम और हमारे भाई, भतीजे, भानजे, साले तथा बहनोई सभी उनके मेहमान होंगे।

अगर आप पूछें कि उनकी चीनी हम क्यों खायँगे और उनके बिल में क्यों रहेंगे तो इसका कामिल जवाब यही है कि वह चींटियाँ हैं और हम चींटे। दूसरे, हम चींटियों के उन्नति-साधन में निःस्वार्थ भाव से प्रवृत्त हुए हैं, इसलिए हम उनकी चीनी खायँगे और बिल में भी रहेंगे। तीसरे, हमको अपनी प्रिय उच्च भूमि त्याग करके आना होगा, इस कारण इस दुःख के निवारणार्थ चीनी कुछ अधिक परिमाण में खाना आवश्यक है। चौथे, विदेश में रहकर विजाति के बीच विचरण करना होगा, फिर प्रतिकूल जल-वायु के सेवन से हमें अनेक रोग हो सकते हैं। इससे अनुमान होता है कि हम बहुत दिन तक नहीं बचेंगे। हाय! हम लोगों की क्या शोचनीय अवस्था है। हीन जाति के उपकार के हेतु जब हम अपने प्राण तक देने को प्रस्तुत हैं तब चीनी खायँगे ही और बिल में, जहाँ तक जगह मिलेगी, हम अपने साले-बहनोई आदि को साथ लेकर रहेंगे ही।

चींटियाँ यदि आपत्ति करेंगी तो हम उन्हें अकृतज्ञ कहेंगे। यदि वे चीनी खाना और बिल में रहना चाहेंगी तो हम चींट-भाषा में उन्हें स्पष्ट कहेंगे कि तुम चींटी हो, खिन्न हो, निरीह प्राणी हो। इससे बढ़कर और प्रबल युक्ति क्या हो सकती है?

तो चींटियाँ खायँगी क्या? यह हम नहीं जानते*। हाँ, भोजन और वासस्थान की असुविधा हो सकती है, किन्तु

* हम जानते हैं, वे सड़ी-गली चीजें खाकर भी प्राणधारण कर सकती हैं।—अनुवादक।

उन्हें धैर्य धारणकर यह विवेचना करनी उचित है कि, हमारे लम्बे पद-स्पर्श से क्रमशः उनकी पद-वृद्धि की सम्भावना है। शृङ्खला और शान्ति का बिलकुल अभाव नहीं रहेगा। वे धीरे-धीरे उन्नति करें और हम उनका सञ्चित मक्खन-मिसरी खायँ। ऐसा इन्तज़ाम रहेगा तभी शृङ्खला और शान्ति की रक्षा होगी, नहीं तो विवाद उपस्थित होने में क्या बाधा है? सिर पर बोझ पड़ने ही से विचार करके चलना होता है।

चीनी के अभाव और नये नये कानून तथा शान्ति-शृङ्खला के भार से यदि चींटी जाति नष्ट हो जायगी तो हम लोग उन्नति प्रचार करने अन्यत्र चले जायँगे—क्योंकि हम चींटे हैं, हमारी जाति प्रबल है; उच्च पद के प्रभाव से हम अत्यन्त उन्नत हैं।

प्राचीन तत्त्व

प्राचीन भारत में गैलभेनिक बैटरी थी या नहीं

और

आक्सिजन भाफ का नाम क्या था?

[१]

विषय अवश्य गुरुतर है, किन्तु इससे यह न समझ लेना कि इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण बिलकुल संग्रह नहीं किया जा सकता, यह हम स्वीकार नहीं कर सकते। प्राचीन

भारत में इतिहास नहीं था, यह बात मानने योग्य नहीं। सच्ची बात यह है कि आधुनिक भारत में अनुसन्धान और गवेषणा का बिलकुल अभाव है। इस लेख के पढ़ने ही से पाठक देखेंगे कि हमारे अनुसन्धान में त्रुटि नहीं है और उसका यथेष्ट फल भी हुआ है।

प्राचीन भारत में गैलभेनिक बैटरी थी या नहीं, और आक्सिजन भाफ का नाम क्या था, इसका विचार करने के पूर्व कीटक भट्ट और पुण्ड्रवर्द्धन मिश्र के जीवित-काल का निर्धारण करना बहुत ज़रूरी है।

पहले तो यह निश्चय होना चाहिए कि कीटक भट्ट किस राजा के राजत्व-काल में थे। इस सम्बन्ध में मतभेद है। कोई कहता है कि वे पुरन्दर सेन के मन्त्री थे; किसी का मत है कि वे विजयपाल के सभा-पण्डित थे। अब यह देखना चाहिए कि पुरन्दर सेन कै व्यक्ति थे और उनमें से कौन मिथिला में, कौन उत्कल में और कौन काश्मीर में राज्य करता था; उनमें से किसका राजत्व-काल ईसवी सन् के पाँच सौ वर्ष पूर्व, किसका नौ सौ वर्ष बाद और किसका ईसवी सन् के समकाल में था। बोधनाचार्य्य ने अपनी राजावली नामक पुस्तक में लिखा है,—"परस्परं प्रथित-पथिकौ (पोथी के बीच के दो पत्र नहीं मिलते) लसत्यसौ। इस श्लोक के अर्थसम्बन्ध में पुरातत्त्वकोविद पण्डितप्रवर मधुसूदन शास्त्री महाशय के साथ हमारे मत का ऐक्य नहीं होता।

क्योंकि नृपति-निर्घण्ट ग्रन्थ में उद्भट सूरि लिखते हैं— "निग...नन्द... परन्त... श्रम्।" इसके बीच में जो अर्थ था, उसका अधिकांश तो कीड़े हज़म कर गये हैं, जो बचा है, वह बोधनाचार्य के लेख का कुछ समर्थन नहीं करता।

किन्तु दोनों लेखों की प्रामाणिकता का मिलान करते समय पहले बोधनाचार्य और उद्भट सूरि के जन्मकाल की पूर्वापरता स्थिर करनी उचित है।

देखिए, चीनी परिव्राजक निनफू बोधनाचार्य के सम्बन्ध में क्या कहता है। खेद है, हम लोगों के दुर्भाग्य से उसने उनके विषय में कुछ नहीं कहा।

हमने अरबियन भ्रमणकारी अल-करीम, पुर्तगालवासी यात्री गञ्जालेस और ग्राक दार्शनिक मैकडीमस के समस्त ग्रन्थों की खोज की। पहले इन तीनों के भ्रमण-काल का निर्णय करना इतिहास-वेत्ताओं का काम है। हम भी यह करने को तैयार हैं। किन्तु लेख बढ़ जायगा, इस विचार से पहले यह कहना आवश्यक है कि उक्त तीनों यात्रियों की किसी रचना में बोधनाचार्य या उद्भट सूरि का कोई उल्लेख नहीं है। निनफू के ग्रन्थ में "ह्लाओ-को" नामक एक व्यक्ति का निर्देश है। स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि यह "ह्लाओ-को" बोधनाचार्य नाम का चैनिक अपभ्रंश है किन्तु "ह्लाओ-को" बोधनाचार्य भी हो सकता है, और शम्बरदत्त भी। इन दोनों में कौन नाम यथार्थ है, यह विचारणीय है।

पुरन्दर सेन एक था, या अनेक या इस नाम का कोई था ही नहीं? पहले तो इसी का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दूसरे उक्त संशयापन्न पुरन्दर सेन के साथ कीटक भट्ट या पुण्ड्रवर्द्धन मिश्र का कोई सम्पर्क था या नहीं, यह निर्णय करना और भी असाध्य है। इस कारण उक्त कीटक भट्ट और पुण्ड्रवर्द्धन मिश्र के रचित मोहान्तक और ज्ञानाञ्जन नामक ग्रन्थ में यदि गैलभेनिक बैटरी और आक्सिजन वाष्प का कोई उल्लेख न पाया जाय तो इससे क्या प्रमाणित हुआ, यह कहना कठिन है, सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि उक्त दोनों पण्डितों के समय में गैलभेनिक बैटरी और आक्सिजन का आविष्कार नहीं हुआ था। किन्तु वह कौन समय था, इसका हम अनुमान करें तो मधुसूदन शास्त्री प्रतिवाद करेंगे और वे अनुमान करें तो हम प्रतिवाद करेंगे। इसमें सन्देह नहीं।

इसलिए, कीटक और पुण्ड्रवर्द्धन से यहीं विदाई लेनी पड़ी। उनके विषय में आलोचना बड़ी ही मुख्तसर हुई, इसलिए हम पाठकों से क्षमा माँगते हैं। किन्तु उन्हें विवेचना करके देखना होगा कि हमें अपने लेख की पुष्टि के लिए पहले नन्द, उपनन्द, आनन्द, व्योमपाल, क्षेमपाल और अनङ्गपाल प्रभृति अठारह राजाओं के समय और वंशावली के निर्णय सम्बन्ध में मधुसूदन शास्त्री का मत-खण्डन करके सोमदेव, चौलूक भट्ट, शङ्कर, कृपानन्द और उपमन्यु प्रभृति पण्डितों का जीवितकाल निश्चित करना होगा। इसके अनन्तर हम उनके रचित

बोधप्रदीप, आनन्दसरित्, मुग्धचैतन्यलहरी आदि पचपन प्राचीन ग्रन्थों की आलोचना करके दिखलावेंगे कि उसमें से किसी भी ग्रन्थ में गैलभेनिक बैटरी या आक्सिजन के नाम का गन्ध तक नहीं है। उक्त ग्रन्थों में षट्चक्रभेद, साँप काटने का मन्त्र, और रक्षाबीज आदि हैं; एक पण्डित ने ऐसा भी मत व्यक्त किया है कि सपने में अपनी दुम देखने से ब्राह्मण को भूमिदान और कुण्डपतनक नामक चातुर्मास्य व्रत का पालन करना आवश्यक है। किन्तु बैटरी और वाष्प के विषय में कोई वर्णन या विधान नहीं पाया गया। हम क्रमशः इसकी सविस्तर समालोचना करके इतिहासहीनता के सम्बन्ध में जो भारत का दुर्नाम है, उसे दूर करेंगे—प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर स्पष्ट रूप से प्रमाणित कर देंगे कि पूर्वकाल में गैलभेनिक बैटरी भारतवर्ष में नहीं थी और संस्कृत भाषा में आक्सिजन भाफ का नाम भी नहीं पाया जाता।

मधुसूदन शास्त्री द्वारा उक्त लेख का प्रतिवाद

[२]

हमारे भारतीय इतिहास-समुद्र के हंस, वङ्ग-साहित्य-कुञ्ज के गुञ्जोन्मत्त कुञ्जविहारी बाबू ने क़लम पकड़ा है। अतएव प्राचीन भारत, सावधान! कौन जाने कहाँ नश्तर लगेगा! लड़के को यदि भले-बुरे का ज्ञान होता तो वह अपने अमृत के

घड़े को लाठी से फोड़ने के लिए क्यों उद्यत होता ? अथवा बहुदर्शी प्राचीन भारत को सावधान करना अनावश्यक है, कुञ्जविहारी के हाथ में लेखनी देख वह पवित्र परिच्छद से सर्वाङ्ग ढककर बैठा है। इसी से हमारे बटतला के शम्भुवाहन को प्राचीन भारत में गैलभेनिक बैटरी और आक्सिजन का संस्कृत नाम नहीं मिला। धन्य है उसकी स्वदेश-हितैषिता को।

हमारे देश में किसी समय गैलभेनिक बैटरी और आक्सिजन वाष्प आविष्कृत हुआ था, इस बात को आप भारतवासी क्यों मानेंगे ! मानते तो आपकी ऐसी दशा क्यों होती ? आज आप कलङ्कित हैं, अपमानित हैं, अन्न-वस्त्र-हीन हैं, दासानुदास हैं, भिक्षुक हैं, दूसरे के पैरों पर गिरे हुए हैं। संसार में आपकी ऐसी अवस्था क्यों है ? आप इस प्रकार मिट्टी की मूरत क्यों बने हुए हैं ? किसी दिन आप और आपके साहित्य-संसार के श्रेष्ठ जीव कह बैठेंगे कि असभ्य भारत की हवा में आक्सिजन वाष्प नहीं था और भारत का आकाश ऐसा इनलाइटेण्ड भी नहीं था कि उसमें बिजली चमक सके।

भाई भारतवासियो ! तुम प्रकाश के भी प्रकाशक हो, हवा के साथ तुम कई आक्सिजन भाफों को खींच सकते हो और बिजली तुम्हारे हाथ की कठपुतली हो रही है। मैं मूर्ख हूँ, मैं कुसंस्कारग्रस्त हूँ, इसी से मैं विश्वास करता हूँ कि प्राचीन भारत में गैलभेनिक बैटरी थी और आक्सिजन भाफ का नाम भी छिपा नहीं था। क्यों विश्वास करता हूँ ? पहले

निष्ठापूर्वक कूर्म्म, कल्कि और स्कन्द पुराण पढ़ो; गाय और ब्राह्मणों की भक्ति करो; यवन का अन्न खाने की इच्छा हो तो चुप-चाप खाकर समाज में अस्वीकार करो; जितनी नई शिक्षा पाई हो वह सब भूल जाओ तब समझ सकोगे कि क्यों विश्वास करता हूँ। आज मैं तुमसे जो कहूँगा उसे तुम हँसी में उड़ा दोगे। तुम्हारे निकट मेरी युक्ति मूर्ख का प्रलापमात्र प्रतीयमान होगी।

तो भी एक बार पूछता हूँ, कीड़ों ने जितने ग्रन्थ खाये हैं और मुसलमानों ने जितने नष्ट किये हैं उसका क्या कुछ ठिकाना है! जिस अत्याचारी यवन ने भारत की पवित्र स्वाधीनता नष्ट कर दी है, वह भारत की गैलभेनिक बैटरी के प्रति ममता दिखलावेगा, क्या यह कभी सम्भव है? जिन म्लेच्छों ने हज़ारों आर्य्य-सन्तानों के मस्तकों को पगड़ी और शिखा के साथ उड़ा दिया था वे हमारी पवित्र देवभाषा से आक्सिजन भाफ का नाम उड़ा दें तो इसमें क्या आश्चर्य है?

यह तो पहली युक्ति हुई। दूसरी युक्ति यह कि यदि यवनों के द्वारा गैलभेनिक बैटरी और आक्सिजन का प्राचीन नाम लुप्त नहीं हुआ तो वह कहाँ गया? उसका कहीं कोई चिह्न क्यों नहीं देखा जाता? प्राचीन शास्त्र में सैकड़ों क्या सहस्रों ऋषियों-मुनियों के नाम हैं। उनमें गल्वन ऋषि का नाम बहुत खोजने पर भी क्यों नहीं मिलता? जिस पवित्र भारत में दधीचि ने वज्र बनाने के लिए इन्द्र को अपनी हड्डियाँ

दी थीं; भीमसेन ने गदा के प्रहार से जरासन्ध को मारा था और जह्नु मुनि एक ही चुल्लू में लेकर गङ्गा को पी गये थे एवं फिर जाँघ की राह से निकाल दिया था; तथा जिस भारत में ऋषि का वाक्य पालने के लिए विन्ध्य पर्वत आज भी सिर झुकाये खड़ा है हा ! उस भारत के साहित्य से आक्सिजन भाफ का नाम तक लुप्त हो गया है। सर्वनाशी यवन का उपद्रव यदि इसका कारण नहीं तो क्या कारण है? आप ही बताइए।

तीसरी युक्ति यह कि, इतिहास के द्वारा सर्वथा प्रमाणित हो गया है कि यवनों ने प्राचीन भारत की बड़ी-बड़ी कीर्तियों को नष्ट कर डाला है। इस बात को अब कोई अस्वीकार नहीं कर सकेगा। आज जो हम निन्दित, अपमानित, भीत, भयग्रस्त, रिक्तहस्त, प्रभावहीन और पराधीन बने हुए हैं, इसका एकमात्र कारण भारत में यवनों का ही अधिकार है। यदि इतनी बड़ी हानि को हम लोग स्वीकार कर ही चुके हैं तो हमारी गैलभेनिक बैटरी और आक्सिजन का नाम भी उसी दुष्ट ने लोप कर दिया है। उसी हानि के साथ इसे भी मिला देने में कुण्ठित होने का रत्ती भर भी कोई कारण नहीं देख पड़ता।

चौथी युक्ति, जब किसी समय मुसलमान ने भारत को अपने अधिकार में कर लिया था और बिना सोचे विचारे अनेक पवित्र मस्तकों और मन्दिरों के शिखरों को तोड़ डाला था, तब उसी के माथे सारा दोष मढ़ा जा सकता है। इसके लिए कोई हतक-इज़्ज़ती की नालिश भी नहीं करेगा। तब

सभ्यता के किसी उपकरण के सम्बन्ध में जो व्यक्ति प्राचीन भारत की दीनता स्वीकार करता है वह पाषण्डी, हृदय-हीन और बिगड़े दिमाग़वाला तथा स्वदेशद्रोही है। इसलिए उसकी बात का कोई मूल्य ही नहीं। वह चाहे जितने प्रमाणों का सङ्ग्रह करे, कोई पक्का सनातनधर्म्मी हिन्दू उसे कभी सच्चा प्रमाण नहीं मान सकेगा।

ऐसी और भी अनेक युक्तियाँ दे सकते हैं। किन्तु हम हिन्दू हैं, हमारे सदृश उदार और सहिष्णु जाति दूसरी नहीं। हम दूसरे के मत पर कभी हस्तक्षेप नहीं करना चाहते।

लेख का नमूना

सम्पादक महाशय समीपेषु—

ढिठाई माफ़ कीजिएगा, चुप रहना ही ठीक है, पर न कहना भी ठीक नहीं। बिना कहे नहीं रह सकता हूँ। आप अब भी लिखना नहीं जानते। ऐसे कोमल भाषण से काम नहीं चलता। गले में कपड़े लपेटकर लोगों को खींचना पड़ेगा। किन्तु उपदेश की अपेक्षा दृष्टान्त को अधिक फलप्रद जानकर मैं अपने एजेन्सी-आफ़िस से लेख का एक नमूना भेजता हूँ। पसन्द हो तो छाप डालिएगा, परन्तु पुरस्कार देना न भूलिएगा। जिसने लिखा है, वह साहित्य-संसार का एक सुपरिचित व्यक्ति है। भारत के भूगोल में साहित्य-संसार कहाँ

है, ठीक-ठीक नहीं जानता; जानता इतना ही हूँ कि हमारे विख्यात लेखक को उसके घर के लोगों के सिवा और कोई नहीं जानता। इससे अनुमान किया जा सकता है कि साहित्य-संसार कहने से उसकी विधवा फूफी, उसकी स्त्री और दो विवाहयोग्य कन्याएँ समझी जाती हैं। इस छोटे से साहित्य-संसार की जीविका हमारे विख्यात लेखक के ऊपर ही सम्पूर्ण रूप से निर्भर है। इसलिए सदा सर्वदा रुचि-रक्षा करके, सत्य-रक्षा करके और भद्रता की रक्षा करके लिखने से इसका किसी तरह निर्वाह नहीं हो सकता। इसलिए ऐसा उपयुक्त लेखक और नहीं पाइएगा।

तो भी क्यों कहता हूँ ?

देखकर विस्मित, आश्चर्यान्वित और चकित होना पड़ता है, क्या कहूँ, रुलाई आती है, आँसू से छाती भीग जाती है, जब देखता हूँ, जब प्रतिदिन यहाँ तक कि प्रत्यक्ष देखता हूँ—क्या देखता हूँ! वह इस जले मुँह से कैसे कहूँगा कि क्या देखता हूँ! कहते लाज लगती है, शरम आती है, मुँह ढकने की इच्छा होती है, ख़ूब ज़ोर से चिल्लाकर बोलने को जी चाहता है; मा वसुन्धरे, जननी, एक बार दो खण्ड हो जाओ—एक बार दो टूक होकर फट जाओ, मा, सन्तान की लज्जा का निवारण करो! भाई भारतवासी, क्या समझ गये कि किस कलङ्क की बात, किस लाञ्छना की बात, किस दुःसह लज्जा की बात कह रहा हूँ; प्रकट कर रहा हूँ, प्रकट के नाम से

कण्ठ रुद्ध हुआ जा रहा है। नहीं, नहीं समझा ! तुम क्यों समझोगे ! तुम 'मिल' की बात समझोगे, 'स्पेन्सर' की समझोगे, तुम 'शेली' की कविता को कुछ-कुछ—कहीं-कहीं—समझ लोगे, तुम ग़रीब की बात क्यों समझोगे, दरिद्र की बात क्यों सुनोगे—इस अकिञ्चन की पुकार तुम्हारे कान में क्यों जायगी ? किन्तु एक प्रश्न है, एक बात पूछूँगा। गुण-निधान, इस मुँह से एक उत्तर सुना चाहता हूँ—अच्छा भाई, दूसरे की बात समझो, अपने लोगों की बात मत समझो, बाहर की बात समझते हो, और घर की बात नहीं समझ सकते ? जो अपना नहीं, उसकी बात समझते हो, जो अपना है उसकी नहीं समझते ! नहीं समझते, इसका भी दुःख नहीं—इसका खेद भी नहीं, इसका रत्ती भर शोक भी नहीं, शोक की आवश्यकता ही नहीं किन्तु बात एकबारगी तुम्हारी समझ में नहीं आती, एकदम अबोध की भाँति बैठ रहे हो !—यही खेद का विषय है, यही हम लोगों की दुर्दशा है, यही हम लोगों का अभाग्य है ! तुम पूछ सकते हो, जो बात आज कोई समझेगा नहीं वही तुमने क्यों पूछी, क्यों उसकी चर्चा की ? जिस बात को सभी भूल गये हैं उसका स्मरण क्यों दिलाते हो ? जो असह्य वेदना है, जो दुःसह व्यथा है, जो असह्य यन्त्रणा है उसमें आघात क्यों करते हो ? मैं भी तो यही बात कहता हूँ भाई ! इस टूटे मन्दिर में इस फटे कण्ठस्वर की प्रतिध्वनि को क्यों बार-बार उच्चारित कर रहा हूँ ! इस श्मशान की

चिताग्नि में फिर क्यों नयन-जल ढाल रहा हूँ ! आर्य-जननी के समाधिक्षेत्र में इस उन्नीसवीं शताब्दी के सभ्यशासित, सभ्यचालित, नई सभ्यता के दिन फिर क्यों नीरवता की तरङ्ग को उत्थित करता हूँ ! क्यों करता हूँ ? तुम कैसे समझोगे भाई, क्यों करता हूँ ! तुम तो सभ्य हो, तुम क्योंकर समझोगे ! तुमने तो नई सभ्यता के नये विद्यालय में नई शिक्षा पाकर नई तान से नया राग अलापना आरम्भ किया है; नये रस में नई डुबकी लगाकर नये भाव में भ्रान्त हो गये हो; तुम कैसे समझोगे, क्यों करता हूँ ! तुमने यह बात कभी सुनी नहीं और आज बिलकुल ही भूल गये हो, तुम यह बात कभी कुछ समझे नहीं और आज एकबारगी ही नहीं समझते । तुम क्योंकर समझोगे, क्यों करता हूँ ! तथापि पूछोगे, क्यों करता हूँ ? भाई मैंने तुम्हारा 'मिल' नहीं पढ़ा है, तुम्हारा 'स्पेन्सर' नहीं पढ़ा है, तुम्हारा 'डार्विन' नहीं पढ़ा है, मैंने तुम्हारा 'हक्सले', 'टिण्डल', 'रस्किन्' तथा 'कार्लाइल' नहीं पढ़ा है, और पढ़कर समझ भी नहीं सकता हूँ । मैंने तो केवल षड्-दर्शन और अष्टाङ्गवेद, संहिता और पुराण, आगम और निगम, उपक्रमणिका और प्रथम भाग ऋजुपाठ पढ़ा है । इन सब ग्रन्थों को इस पतित भारत में मुझे छोड़ और न किसी ने पढ़ा है, और न पढ़कर समझा है । फिर भी पूछोगे, क्यों करता हूँ ! मेरे प्यारे भ्रातृगण, मैं पागल हूँ, उन्माद-ग्रस्त हूँ, वायु-ग्रस्त हूँ, मेरा दिमाग़ ठीक नहीं है, बुद्धि स्थिर नहीं है, चित्त उद्भ्रान्त है ।

भारतवासी भ्रातृगण, अब समझ गये न, क्यों करता हूँ, बेरोक आँसू क्यों जा रहे हैं! इन दुखिया आँखों के आँसू क्यों रोके नहीं रुकते, क्यों मिथ्या अरण्य-रोदन करता हूँ और क्यों सूनी जगह में रो-रोकर मरता हूँ! इस नीरव हृदय की ज्वाला व्यक्त हुई न, इस भस्मीभूत प्राण की प्रज्वलित शिखा देख ली न; सूखी अश्रुधारा दोनों गालों पर होकर क्यों बह चली? जो शब्द कभी सुना नहीं क्या उसकी प्रतिध्वनि सुन पड़ी! जिस आशा को कभी हृदय में स्थान नहीं दिया, उसके नैराश्य का क्या कुछ भी अनुभव किया है; जो समझाने पर भी नहीं समझा जाता और जो समझने की चेष्टा करने पर भी समझने में उत्तरोत्तर कठिन हो उठता है, वह क्या आज तुम्हारे इस उन्नीसवीं शताब्दी के सभ्यता से रुके हुए कर्ण-कुहर में प्रविष्ट हुआ?

❀ ❀ ❀

सम्पादक महाशय, आज यहीं तक प्रकाश किया गया है। क्योंकि इसके आगे का पैराग्राफ़ हमारे लेखक ने आरम्भ ही किया है, "अगर नहीं किया है तो मैं हार गया, चुप हुआ, मैंने मुँह बन्द कर लिया, फिर मैं एक बात भी न बोलूँगा—नहीं, एक भी नहीं।" यह कहकर बात क्यों नहीं कहेंगे, मरघट में बात बोलने ही से क्या फल होता है, और समाधिक्षेत्र में बात कहने ही से किस तरह निष्फल होती है, एवं बात न कहने से हृदय कैसे विदीर्ण होता है और हृदय

विदीर्ण होने से बात कैसे बाहर होती है, यही भारतवासियों को समझाने में फिर प्रवृत्त हुआ हूँ। किन्तु किसी तरह कृतकार्य नहीं होता। यह भाग इतना लम्बा है कि आपके पत्र में उसके समावेश के लिए जगह नहीं मिलेगी। पाठकों को भरोसा रखना चाहिए कि यह लेख शीघ्र ही पुस्तकाकार छपेगा। मूल्य ५।।।) मात्र, किन्तु जो लोग डाक-महसूल स्वरूप ५।।।) भेजने की कृपा करेंगे, उन्हें बिना मूल्य ग्रन्थ उपहार दिया जायगा।

—साहित्य-एजेंसी का कार्याध्यक्ष।

सारवान् साहित्य

नाटक

सम्पादक महाशय,

आजकल हिन्दी-साहित्य में ढेरों नाटकों और उपन्यासों की वृद्धि हो रही है। किन्तु उसमें सार पदार्थ कुछ नहीं रहता। न उसमें तत्त्वज्ञान रहता है, न अच्छे-अच्छे उपदेश ही होते हैं। क्या करने से धन की वृद्धि हो सकती है; गायों के रोग-निवारण का उपाय क्या है; द्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैत-वाद में कौन सा वाद श्रेष्ठ है; कफ-पित्त और वायु बढ़ाने में देशी कुहड़े और विलायती कुहड़े में कोई भेद है या नहीं; अशोक और हर्षवर्द्धन में कौन पहले और कौन पीछे हुआ;—

हमारे अगण्य काव्य-नाटकों में इन सब सारगर्भित विश्वोपकारी विषयों की कोई मीमांसा नहीं पाई जाती। एक बार कल्पना करके देखो, यदि किसी नाटक के पञ्चम अङ्क के अन्त में कोई ऐसा तत्त्व पाया जाय जिसके द्वारा जीवशक्ति और दैव-शक्ति का अन्योन्य सम्बन्ध निरूपित हो अथवा सृष्टि-विकास का क्रम-पर्याय नाटक के अङ्क-अङ्क में विभक्त होकर दुर्गम-ज्ञान-शिखर की रत्न-सोपान-परम्परा रचित हो तो रसिक सहृदय पाठक कैसे पुलकित और परितृप्त न होंगे। इन दिनों जो असार, म्लेच्छभाव के स्पर्श से दूषित, ग्रन्थ निकलते हैं उन्हें पढ़कर बाहर के बाबू तो साहब और घर के भीतर की स्त्रियाँ बीबी बनती हैं। हिन्दी-साहित्य के इस कलङ्क को मिटाने की इच्छा से मैं नाटक और उपन्यास के बहाने कितने ही शिक्षा-प्रद ग्रन्थों की रचना में प्रवृत्त हुआ हूँ। प्रथम संख्या में पञ्चाङ्ग (पत्रे) को नाटकाकार निकालने की बात स्थिर की है। ग्रहों के फलाफल पर से वर्त्तमान समय के अँगरेज़ी-शिक्षित बाबू और बीबियों का विश्वास क्रमशः घटता जा रहा है। उस नष्ट विश्वास को पुनरुज्जीवित करने के लिए मैंने इस कौशल का अवलम्ब ग्रहण किया है। साधारण लोगों के चित्त को इस ओर खींचने के अभिप्राय से इस नाटक का कुछ नमूना आपके जग-द्विख्यात पत्र के किसी पार्श्व में प्रकाश करना चाहता हूँ।

नाटक के पात्र

हर। ... . पार्वती।

पहला अङ्क

[दृश्य कैलास पर्वत]

हर, पार्वती।

पार्वती—नाथ !

हर—प्रिये ! क्या है ?

पार्वती—श्वेत वराह कल्प से कितने मनुओं की उत्पत्ति हुई है ? यह मनोहर प्रसङ्ग सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है।

हर—(मुस्कुराकर) प्रिये, पञ्चाङ्ग के प्रथम सृष्टिकाल से आज तक मैं प्रत्येक वर्ष के आरम्भ में इस परम प्रष्टव्य प्रश्न के उत्तर में तुम्हारा कुतूहल निवृत्त करता आता हूँ। प्राणेश्वरी ! क्या अब तक इस सम्बन्ध में तुम्हारी धारणा उत्पन्न नहीं हुई ?

पार्वती—प्राणनाथ, आप जानते ही तो हैं, हम बुद्धिहीन स्त्रीजाति हैं, ख़ासकर आज-कल की बीबियों की भाँति मैंने फ़ीमेलस्कूल (स्त्री-पाठशाला) में कभी पढ़ा नहीं। (समझता हूँ, सभी की दृष्टि पर यह बात चढ़ जायगी कि यहाँ वर्त्तमान शिक्षिता स्त्रियों पर तीव्र आक्षेप किया गया है। इससे नवीन स्त्री-शिक्षा का बहुत कुछ निवारण होगा।—लेखक) हृदयनाथ, दिन-रात एक पतिचिन्ता के सिवा जिसे और कोई सोच-विचार नहीं, उसके स्मृति-पट पर इतने मनुओं की बात कैसे अङ्कित होगी ? हज़ार अच्छे हों, फिर भी हैं तो वे पर पुरुष ही। (वर्त्तमान समय की पाठिकाएँ यहाँ पतिभक्ति का सुन्दर उपदेश पावेंगी।—लेखक)

हर—प्रियतमे, अच्छा तो सावधान होकर मनोहर कथा सुनो। श्वेत-वराह-कल्प से छः मनु गत हो चुके हैं। पहला स्वयंभुव मनु, दूसरा स्वारोचिष मनु, तीसरा औत्तमज मनु, चौथा तामस मनु, पाँचवाँ रैवत मनु, और छठा चाक्षुष मनु। इस समय सातवें मनु वैवस्वत का अधिकार है। सत्ताइस युग बीत गये हैं। अट्ठाइसवें कलियुग का आरम्भ हुआ है। चारों युगों का परिमाण तेंतालीस लाख बीस हज़ार वर्ष है।

पार्वती—(आपही आप) अहा क्या ही मधुर कथा है। (प्रकाश्य) प्राणनाथ, अब सत्ययुग के उत्पत्ति-समय का निरूपण करके दासी के कर्णकुहर में अमृत की वर्षा कीजिए।

हर—प्रिये! कहता हूँ, सुनो। वैशाख शुक्लपक्ष की अक्षय तृतीया तिथि रविवार को सत्ययुग की उत्पत्ति हुई, इत्यादि। (इस प्रकार काव्य-कौशल के साथ प्रथम अङ्क में एक-एक कर चारों युगों की उत्पत्ति और उनका विवरण वर्णित होगा।—लेखक)

दूसरा अङ्क

[दृश्य कैलास]

बैल की पीठ पर महेश और शिलापृष्ठ पर हैमवती बैठी हैं। नाटक में विचित्रता के लिए हर-पार्वती का नाम बदल दिया गया है और द्वितीय दृश्य में वृष की अवतारणा की गई है। यदि किसी रङ्गभूमि में इस नाटक का अभिनय हो तो अवश्य ही वृष बननेवाले मनुष्य का अभाव नहीं होगा। इस

अङ्क में मधुर सम्भाषण से पार्वती का महादेव के द्वारा वर्ष-फल जानना और प्रसङ्ग-क्रम से सोने के भारत की दुर्दशा से दुखी हो पार्वती का विलाप और रेलगाड़ी प्रचलित होने से आर्यावर्त का जो-जो अनिष्ट हुआ है, उसका वर्णन बड़े कौशल से दिखलाया गया है। पश्चात् मेघेश-फल और शस्याधिपति-फल नामक सुख-श्राव्य प्रसङ्ग से इस अङ्क की समाप्ति हुई है।

तीसरा और चौथा अङ्क

[दृश्य कैलास]

व्याघ्रचर्म पर त्र्यम्बक और अम्बिका बैठी हैं।

नाट्यशाला में बघछाले का आयोजन यदि असम्भव हो तो कार्पेट बिछा देने ही से काम चल जायगा। इन दोनों अङ्कों में वारबेला, कालबेला, परिघ योग, विष्कम्भ योग, असृक् योग, विष्टिभद्रा, महादग्धा, नक्षत्रफल, राशिफल, वव करण, बालव करण, तैतिल करण, किंस्तुघ्न करण, घातचन्द्र, तारा-प्रतीकार और गोचर-फल आदि का वर्णन है। (अभिनेताओं से लेखक का सविनय अनुरोध है कि इन दोनों अङ्कों में वे यथानुरूप भाव-रक्षा करके अभिनय करें। क्योंकि अरिद्विदश और मित्र-षडष्टक के कथन में यदि अभिनेता के कण्ठ-स्वर और भावभङ्गी में भिन्नता न रहे तो दर्शकों के चित्त पर भाव कभी उच्छ्वसित नहीं हो उठता।)

पाँचवाँ अङ्क

[दृश्य कैलास]

सिंह के ऊपर त्रिपुरारि और दुर्गा बैठी हैं।

(सिंह के अभाव में काठ की चौकी हो तो कोई हानि नहीं।)

दुर्गा—प्रभु, देव-देव, आप त्रिकालज्ञ हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान सब आपकी आँख के सामने नाच रहे हैं। अच्छा बताइए तो, इस बार सन् १८७६ का नया क़ानून क्या कहता है?

त्रिपुरारि—भगवती शुम्भ-निशुम्भ-घातिनि, सुनो। एक विषय के अनेक दस्तावेज़ होने से उनमें प्रधान-प्रधान में नियमित स्टैम्प और दीगर काग़ज़ात में एक रुपये के हिसाब से देना होता है।

इसके अलावा दस्तावेज़-रजिस्टरी का ख़र्च, तमादी होने का नियम, वकील-ख़र्चा, खज़ाना-विषयक क़ानून, इन्कम्टैक्स, सेविंग्स बैङ्क, मनीआर्डर, अन्त में साउथ ईस्टर्न स्टेट रेलवे की तृतीय श्रेणी के भाड़े की बात कहकर यवनिका-पतन। इस अङ्क में जो व्यक्ति सिंह बनेगा उसे कुछ आपत्ति हो सकती है। इतनी देर तक दो आदमियों को पीठ पर चढ़ाकर घुटने के बल स्थिर भाव से खड़ा रहना कठिन है। इसलिए वकील-ख़र्चा कहते समय सिंह एक बार गरजकर बोल उठेगा—"मा, मुझे भूख लगी है।" मा कहेगी—"अच्छा वत्स, जाओ; सहारा के रेगिस्तान में शिकार पकड़कर खाओ, हम नीचे उतरकर बैठती हैं।" घुटनों और हाथों के सहारे चलकर

सिंह निकल जायगा। इस ढङ्ग से सिंह के रहने की जगह का परिचय दर्शक पावेंगे। मेरे नये मित्रों ने सलाह दी थी कि इसके बीच-बीच में नन्दी और भृङ्गी के हास्य रस की अवतारणा करने से अच्छा होता। किन्तु ऐसा होने से नाटक का गौरव घट जाता। इसलिए हास्य की प्रगल्भता को मैंने यत्न-पूर्वक हटा दिया है। भविष्य में सुश्रुत और चरक-संहिता को नाटक के आकार में लिखने की अभिलाषा है, और उपन्यास की भाँति छोटा साहित्य कहाँ तक सारवान् किया जा सकता है, इसका भी पाठकों को कुछ नमूना देने का सङ्कल्प किया है।

भवदीय एकान्त अनुगत

श्रीजनहितैषी-साहित्य-प्रचारक।

मीमांसा

हमारे घर के पास ही नवीन घोष का घर है। पास क्या, बिलकुल सटा हुआ कहना चाहिए।

मैं कभी अपने मकान की छत पर नहीं जाता, झरोखे के सामने भी खड़ा नहीं होता। घर का काम-धन्धा, जो उचित जान पड़ता है, करता हूँ।

नवीन घोष के बड़े बेटे मुकुन्द घोष को मैंने कभी नहीं देखा।

किन्तु मुकुन्द घोष वंशी क्यों बजाता है! सबेरे बजाता है, दोपहर को बजाता है, और साँझ को बजाता है। मेरे घर से स्पष्ट सुन पड़ता है।

न मैं कवि हूँ और न मासिक पत्र का सम्पादक, इसलिए मन का सम्पूर्ण भाव प्रकट करने में असमर्थ हूँ। केवल सबेरे रोता हूँ, दोपहर को रोता हूँ और साँझ को रोता हूँ। और जब जी में आता है, घर छोड़कर बाहर निकल जाता हूँ।

समझता हूँ, राधा ने क्यों अपनी सखी को पुकारकर कातर स्वर में कहा था—

"सखी, ज़रा कह दे कन्हैया से जाकर।
वंशी न बजावे, मेरा जियरा ना जलावे।"

चण्डीदास ने क्यों लिखा है—

जहाँ बाँस का नाम नहिं वहीं करूँ मैं वास।
नास करूँ जब बाँस का तब हिय होय हुलास॥

—यह भी समझता हूँ किन्तु पाठक, क्या आपने यह मेरी हृदय-वेदना समझी?

उत्तर

मैंने समझी है, यद्यपि मैं कुल-वधू नहीं हूँ—पुरुष हूँ। किन्तु मेरे घर के पास ही एक कन्सर्ट का दल है। उसमें एक लड़का बाँसुरी बजाना सीखता है—भोर से आधी रात तक स-र-ग-म गाता है। पहले की अपेक्षा उसे अब बहुत कुछ अभ्यास हो गया है। फिर भी प्रत्येक सुर में केवल आधी या चौथाई कसर रह गई है। उसके मारे मेरा मन ऊब उठा है—घर में जी नहीं लगता। बखूबी समझ रहा हूँ, राधा ने क्यों कहा था—"सखी, कह दे कन्हैया से जाकर, वंशी ना

बजावे, जियरा ना जलावे।" जान पड़ता है, श्याम तब नई स-र-ग-म सीख रहे थे। चण्डीदास के भी इस कथन का आशय समझ गया हूँ।—

"जहाँ बाँस का नाम नहिं वहीं करूँ मैं वास।
नास करूँ जब बाँस का तब हिय होय हुलास॥"

मालूम होता है, चण्डीदास के घर के पास कन्सर्ट (बाजन्त्री) का दल था।

मेरे घर के पास जो लड़का वंशी बजाना सीखता है, शायद उसका नाम मुकुन्द घोष है।

—श्रीमङ्गीत-प्रिय।

मुझे यह क्या हुआ! यह कैसी व्यथा है! नींद नहीं, भूख नहीं, मन में सुख नहीं, शान्ति नहीं। रह-रहकर चौंक-चौंक उठता हूँ।

कमलपत्र के पङ्खे की हवा अच्छी नहीं लगती, चन्दन का लेप करने से भी हृदय का दाह नहीं मिटता, बल्कि बढ़ता ही जा रहा है।

ठण्डी हवा से सारे संसार की गरमी दूर होती है, किन्तु सखी को पुकारकर मैं हत-भागिनी कहती हूँ—अरी सखी, जल्द दर्वाज़ा बन्द कर दे।

सखी जब प्यार से मेरी देह को छूती है तब चौंककर उसका हाथ हटा देती हूँ। नहीं जानती, किस हाथ के स्पर्श से सुख मिलेगा!

शरद ऋतु की पूर्णिमा किसे सुखद नहीं होती, वह केवल मेरे कष्ट को दुगुना क्यों बढ़ा देती है ?

मेरे सदृश किसी हतभागिनी के सम्बन्ध में जयदेव ने लिखा है—

"निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम्।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् ॥"

फिर लिखा है—"निशि शशि रुजमुपयाति।" मेरी भी यही दशा है। रात में बेचैनी बढ़ जाती है।

मुझे यह क्या हो गया है ?

उत्तर

तुमको वायु-रोग हो गया है। इसलिए पूरब की हवा बहने पर जो दर्वाज़ा बन्द करवा देती हो, यह अच्छा ही करती हो। चन्दन का लेप न लगातीं तो अच्छा होता। पूर्णिमा तिथि को जो बेचैनी बढ़ जाती है सो केवल तुम्हीं को नहीं, किन्तु रोग का यह तो एक लक्षण है। जिसे यह बीमारी होती है उसे ऐसा ही होता है। चन्द्रमा के साथ विरह, वायु, काव्य और ज्वार-भाटे का एक योग है।

राधिका की तरह रात में तुम्हारा भी रोग बढ़ जाता है। किन्तु राधा के समय में अच्छे डाक्टर नहीं थे पर तुम्हारे समय में डाक्टरों का अभाव नहीं है। इसलिए संपादक से मेरा ठिकाना पूछकर शीघ्र इलाज शुरू कर दो।

—नया उत्तीर्ण डाक्टर।

पैसे की शिकायत

हमारे आफ़िस का साहब कहता है कि हिन्दुस्तानी को अधिक वेतन देने की ज़रूरत नहीं। उसने निश्चय कर रक्खा है कि अच्छे से अच्छे नवयुवक हिन्दुस्तानी के लिए पचीस रुपया मासिक बहुत ऊँचे दरजे का वेतन है। हमारी अवस्था और हमारे देश के सम्बन्ध में साहब जब कोई मत स्थिर करता है तब उस पर हमारा कुछ कहना प्रगल्भता है। साहब के प्रति एक अत्यन्त घनिष्ठ कुटुम्बितासूचक विशेषण का प्रयोग करके मैं मन के क्षोभ से अपनी मित्र-मण्डली में बात-चीत करता हूँ—साहब तो सब जानते हैं।

सुनते हैं, संसार में क्षतिपूर्त्ति का एक नियम है। उस नियम का अर्थ यही है कि जिसे एक वस्तु का अभाव है उसके पास प्राय: दूसरी वस्तु की अधिकता रहती है। आफ़िस में भी इसका प्रमाण मौजूद है। मेरा वेतन जितना कम है परि-श्रम उतना ही अधिक और शिकायत ज़्यादा है। उधर साहब को ठीक इसका उलटा है।

संसार का यह नियम किसी-किसी के लिए कितना ही आनन्द-जनक क्यों न हो, पर मेरे लिए वैसा सुखप्रद नहीं जान पड़ता। सिर्फ़ लाचारी से सब कुछ सहता था, किन्तु जिस दिन मेरे ऊपर के दरजे की एक जगह ख़ाली हुई और बाहर से एक कच्ची उम्र के अँगरेज़ बालक को बुलाकर उस पर नियुक्त करके मेरी तरक़्क़ी रोक दी गई, उस दिन मेरे

मनोदु:ख की सीमा नहीं रही। मन में आया कि अभी काम छोड़कर चल दूँ, बग़ावत करूँ और अँगरेज़ों को देश से हटा दूँ, पार्लियामेन्ट में एक दरख़्वास्त भेजूँ तथा लीडर अख़बार में एक गुमनामी चिट्ठी लिखूँ। किन्तु इनमें से कुछ भी नहीं किया, चुपचाप घर जाकर उस दिन जलपान नहीं किया। बच्चे को सरदी हुई है इस कारण स्त्री को ख़ूब फटकारा, वह रोने लगी। मैं तनिक सबेरे ही चारपाई पर जा लेटा। पड़े ही पड़े सोचने लगा, हाय रे पैसे! तेरे लिए कितना अपमान सह रहा हूँ!

स्त्री रूठकर मेरे पास नहीं आई, किन्तु निद्रा देवी कब माननेवाली थी। वह चुपचाप आ ही गई। एकाएक देखा—मैं एक पैसा हूँ। कुछ भी आश्चर्य मालूम नहीं हुआ। कब, किस पुरानी टकसाल से निकला, यह भी याद नहीं। सिर्फ़ इतना ही मालूम था कि ब्रह्मा के पैर से जैसे शूद्र की उत्पत्ति हुई उसी तरह टकसाल के अत्यन्त छोटे विभाग से मेरा जन्म हुआ है।

उस दिन अख़बार में एक विज्ञापन छपा था कि चौअन्नियों और दुअन्नियों का एक बड़ा अधिवेशन होगा। कोई काम तो था ही नहीं, कुतूहल-वश लुढ़कते-लुढ़कते उस सभा में जा पहुँचा और दीवार से सटकर एक कोने में बैठ गया।

सुकुमारी तन्वङ्गी सहधर्म्मिणी दुअन्नियों को बड़े यत्न से वाम भाग में कर गौराङ्ग चौअन्नियों ने; झुण्ड के झुण्ड, आकर

सभागृह को ढक लिया। उनमें कोई तो रहती हैं कोट के पाकेट में, कोई चमड़े की थैली में और कोई टीन की पिटारी में। भाग्य के दोष से कोई कोई हम लोगों की पड़ोसी बन हमारे गाँव में बटुए के भीतर भी बन्द होकर समय बिताती हैं।

उस दिन का आलोच्य विषय यही था "हम पैसे से बिलकुल अलग होकर रहना चाहती हैं, क्योंकि वह बड़ा ही तुच्छ है।" दुअन्नियाँ बड़े उच्च स्वर से बोल उठीं—"उनका रङ्ग भी ताँबे का है और गन्ध भी अच्छा नहीं।" मेरे पास एक दुअन्नी बैठी थी। उसने कुछ तिरछे भाव से बैठकर नाक सिकोड़ ली। उसके बगलवाली चौअन्नी ने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। मैं तो मारे लज्जा के सिकुड़कर पाई हो गया। मन में कहा—मेरे ही आठ और सोलह को खाकर तुम्हारी यह चमक-दमक है। इसके लिए क्या कुछ भी कृतज्ञता नहीं? मिट्टी तले तो हमारा तुम्हारा दोनों का दरजा बराबर था!

उस दिन प्रस्ताव हुआ—गौर-मुद्रा और ताम्र-मुद्रा के लिए अलग-अलग टकसाल बने। यद्यपि एक ही महाराज की मूर्त्ति, एक ही राजा का चेहरा, दोनों के ऊपर अङ्कित है तथापि इस एक चिह्न से हम किसी तरह उनकी बराबरी स्वीकार करना नहीं चाहतीं। हम उनसे जुदा होकर किसी बटुए में या थैली में या बक्स में रहेंगी। यहाँ तक कि चौअन्नी-दुअन्नी भुनाकर पैसा और पैसा भुनाकर चौअन्नी-दुअन्नी ली जायँ—इस अपमान-जनक क़ानून को भी हम बदलवाना

चाहती हैं। समता के गौरव को हम अस्वीकार नहीं करतीं, किन्तु उसकी एक सीमा है। गिन्नी, मुहर के साथ चौअन्नी-दुअन्नी एक साम्य सीमा के अन्तर्गत है, किन्तु इससे क्या चौअन्नी-दुअन्नी के साथ पैसा भी रहेगा?

सभी चिल्लाकर बोल उठीं—"कभी नहीं, कभी नहीं।" दुअन्नी का तीव्र कण्ठस्वर सबसे ऊँचा सुना गया।

जिस खान से मेरी प्रथम उत्पत्ति हुई थी उसी खान में प्रवेश करने की इच्छा से मैंने वसुन्धरा से फटने का अनुरोध किया परन्तु वसुन्धरा ने यह अनुरोध नहीं माना। मैं दीवार में चिपककर लाल हो ज्यों का त्यों बैठा रहा।

इसी समय चमक-दमक से परिपूर्ण एक नई अठन्नी ने चौअन्नी-दुअन्नी की सभा में आकर प्रवेश किया। उसे देखकर सभी हड़बड़ा उठीं। वह बड़ी तेज़ी से वक्तृता देने लगी; झन-झन शब्द से चारों ओर करतल-ध्वनि हुई।

किन्तु मैंने कान देकर सुना, वक्तृता चाहे जैसी हो पर आवाज़ बिलकुल रुपहले ढङ्ग की नहीं थी। इससे मन में बड़ा सन्देह हुआ। जब सभा भङ्ग हुई तब मैं धीरे धीरे लुढ़कता हुआ बड़े साहस से उसके शरीर पर जा गिरा। ठन् से आवाज़ हुई। वह आवाज़ बिलकुल देशी थी और गन्ध भी हमारी स्वजाति के ही सदृश थी। वह अत्यन्त क्रोध करके बोली—"तुम कहाँ के असभ्य हो?" मैंने कहा—"बाबू, जहाँ के आप हैं वहीं का मैं भी हूँ।" बात खुल गई,

छोकरा हमारा ही एक छोटे दरजे का कुटुम्बी—पैसा—था। कहीं से पारा लगाकर आ गया है।

उसका रूप-रङ्ग देखकर मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। हँसी के शब्द से जाग उठा। देखा तो स्त्री पास ही पड़ी-पड़ी रो रही है। इधर-उधर की दो-एक बातें कहकर मैंने उसे तुरन्त ख़ुश कर लिया। सपने की बात उसे आदि से अन्त तक सुना डाली। छद्मवेषी छिपा नहीं रहता, तो भी मैं चाहता हूँ कि कल से मैं भी पारा लगाकर आफ़िस जाऊँ।

स्त्री—पारा लगाने की अपेक्षा पारा खाकर मर जाना भला है।

ईसप-कथामाला की नई कहानी

एक समय कई लकड़हारे एक पहाड़ पर बड़े मोटे वृक्ष की डाल काटने को उद्यत हुए। अधिक परिश्रम से बचने के लिए उन्होंने बड़ी देर तक विचार किया। अन्त में उन्होंने सोचकर एक नई युक्ति निकाली। जो डाल काटनी थी उसी के ऊपर कई आदमी जा बैठे और बड़ी सावधानी से उस पर कुल्हाड़ी चलाने लगे।

यथासमय डाल कटकर नीचे गिरी और उसी के साथ कई काटनेवाले भी गिरकर पञ्चत्व को प्राप्त हुए।

यह अनिष्ट संवाद सुनकर लकड़हारों का सरदार अधीर हो उस पेड़ के समीप आ खड़ा हुआ और हाथ में कुल्हाड़ी

लेकर बोला—तुमने जो अपराध किया है उसका मैं दण्ड देना चाहता हूँ।

वृक्ष ने बड़े अचरज के साथ कहा—महाशय, मेरे ही कन्धे पर चढ़कर मेरी ही बाँह काट डाली है। विचारिए, इस घड़ी कौन किसको दण्ड देगा ?

सरदार ने लाल आँखें करके कहा—मेरे कई तवलदार (लकड़ी काटनेवाले) असमय में ही चल बसे, उसके लिए कोई दण्ड नहीं पावेगा ! यह हो नहीं सकता।

वृक्ष ने डरकर टूटे स्वर में कहा—उन्होंने बुद्धिमानी के साथ अद्भुत कार्य-कौशल का अवलम्बन करके काम किया था। उसका फल भी उन्हें तुरन्त मिल गया। मैं बुद्धिहीन जड़ वृक्ष हूँ, मुझमें इतना सामर्थ्य न था कि उसका कुछ प्रतिकार करता।

सरदार—किन्तु तुम्हारी ही डाल टूटकर गिर पड़ने से उनकी जान गई, इसमें तो कोई सन्देह नहीं।

वृक्ष—हाँ, यह बात सच है। क्योंकि मेरी ही डाल पर उन्होंने कुठार चलाया था, फिर कटकर गिरता कौन ? प्रकृति का नियम अनिवार्य है।

सरदार ने बड़ी पण्डिताई के साथ कहा—इसलिए तुम्हीं को दण्ड भोगना होगा। तुमको जो कुछ कहना हो, शीघ्र कह डालो। मैं कुल्हाड़ी पर सान धरने चला।

(तात्पर्य यह कि असावधानी से यदि ठोकर लग जाय तो देहली को लात मारो। उस निरीह जड़ पदार्थ के लिए यही एकमात्र सुविचार है।)

पुराने देवताओं पर नई आफ़त

सभा में प्राय: सभी देवता एक साथ अपने-अपने काम से इस्तीफ़ा देने को उद्यत हुए।

वृद्ध पितामह ब्रह्मा ने वैदिक भाषा में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के संयोग से कहा—भो भो देवगणाः शृण्वन्तु! मेरी बात अलग है। मैंने तो संसार की सृष्टि और वेद-रचना समाप्त करके, सब काम छोड़कर, पेन्शन ले ली है। यहाँ तक कि मुझसे कोई काम होने की प्रत्याशा न देखकर सभी ने मेरी पूजा भी बन्द कर दी है। मेरे प्रथम वयस की 'विश्व' और 'वेद' नामक दो रचनाओं का लोगों ने, निर्भय होकर, अपनी-अपनी भाषा में अनुवाद और समालोचना करना आरम्भ कर दिया है। कोई कहता है रचना बुरी नहीं है, किन्तु इससे भी बहुत बढ़िया बन सकती थी। कोई कोई कहते हैं कि हमारे हाथ में यदि प्रूफ़-संशोधन का कार्य होता तो पंक्ति-पंक्ति में छापे की इतनी भूलें न रहतीं—मैं चुपचाप सब सुन रहा हूँ। मन ही मन समालोचकों को सम्बोधन करके कहता हूँ—बाबू, यह मेरी प्रथम रचना है। तुम अवश्य ही मेरी अपेक्षा बहुत पक्के हो; किन्तु उस समय विश्वविद्या-

लय नहीं था; एकदम सभी अपने मन से बनाना पड़ा था। उसके पूर्व यदि तुम ऐसे ही सुशिक्षित होकर जन्म ले लेते तो मैं तुम्हारी समालोचना सुनकर बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करता, मुझे एक विलक्षण 'स्टैण्डर्ड' मिल जाता। मेरे दौर्भाग्य से तुम बहुत विलम्ब से उत्पन्न हुए। जो हो, जब दूसरा संस्करण आरम्भ होगा तब तुम्हारी बात याद रक्खूँगा।

ये दोनों मेरे बनाये हैं, इसे कोई-कोई एक दम अस्वीकार करते हैं। वे अनायास ही साबित कर देते कि यह उन्हीं के हाथ की कारीगरी है। किन्तु ऐसा होने से उनको कल्पना-शक्ति और प्रतिभा की हीनता स्वीकार करनी पड़ती, इसी से मन मारे बैठे हैं। हरे, हरे, इस दीर्घजीवन में मैंने यही दोनों—भले या बुरे—काम किये हैं। इसके सिवा और कोई दुष्कर्म नहीं किया। इसी से इतनी बात सुननी पड़ी है।

जो हो, यह तो हुई मेरे अनुताप की बात। अब तुम लोग किस मनोदुःख से मर्त्यलोक पर असन्तुष्ट होकर अपने बहुत पुराने पद को छोड़ने के लिए प्रवृत्त हुए हो?

तब देवताओं में कोई वैदिक भाषा में, कोई पौराणिक भाषा में और कोई अनुष्टुप् छन्द में, दन्त्य न मूर्द्धन्य ण, पवर्गीय ब और अन्तःस्थ व तथा श ष स के उच्चारण की रक्षा करके बोले—भगवन्, सायन्स नामक एक दैत्य ने घोर उत्पात आरम्भ किया है। इसके आगे वृत्र आदि प्राचीन असुरों को हम कुछ नहीं गिनते।

वृद्ध पितामह ने मुस्कुराकर मन में कहा, उसके हाथ से न जाने किस तरह बचे हो, अब उसे भले ही कुछ न गिनो किन्तु मुझे ख़ूब याद है, उस समय तुम सब अकर्म्मण्य हो रहे थे। अब गम्भीर भाव से चारों मस्तक हिलाकर ब्रह्मा बोले—अवश्य, अवश्य।

देवताओं के गुरु बृहस्पति ने कहा—"ब्रह्मन्, शत्रु से हम उतने नहीं डरते, किन्तु मित्रों के उपद्रव से घबरा गये हैं। इतने दिन तक हम मनुष्यों के हृदय-मन्दिर में रहकर विश्वास-वाटिका में विचरते थे। अब उन्होंने सायन्स के साथ गुप्त रीति से सन्धि स्थापन करके हम लोगों को वहाँ से निकाल दिया है। वे हमें सिर की खोपड़ी के एक ऐसे कोने में रखना चाहते हैं, जो बहुत अपरिष्कृत और सङ्कीर्ण स्थान है। वहाँ विश्वास के अमृत की एक बूँद भी नहीं है। कहते हैं 'देखो इसमें तुम लोगों की कितनी मर्यादा बढ़ी। थे अज्ञान-तिमिराच्छन्न हृदय-गह्वर में और अब आये ज्ञानालोकित मस्तक-शिखर पर! भाग्य से ही हम कई व्यक्ति बुद्धिमान् मिल गये, नहीं तो स्वर्ग या मर्त्य कहीं भी तुम लोगों को बैठने के लिए जगह नहीं मिलती! हम सभी के निकट सिद्ध कर चुके हैं कि यदि तुम और कहीं न रहो तो हमारे वैज्ञानिक व्याख्यान के भीतर तो रहोगे ही। ऐसा कोई बुद्धिमान् अभी तक पैदा नहीं हुआ है जो प्रतिवाद करके तुमको वहाँ से हटावेगा। विष्णु के मीन, कच्छप और वराह आदि अवतारों

का हमने एवोल्यूशन-थ्योरी कहकर प्रचार किया है। देवताओं के उद्धार के लिए हम इतने प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं।'

"भगवन्, हृदय की सच्ची भक्ति अपने देवता के साथ कभी इस प्रकार खिलवाड़ नहीं करती। अब तक हम देवता थे, केवल बीच-बीच में दैत्यों के उपद्रव से स्वर्ग छोड़ना पड़ा था किन्तु अब तक हम लोगों को किसी ने एवोल्यूशन-थ्योरी में नहीं माना था। प्रभो, यदि आपने हम लोगों को सिरजा है तो आप ही बतावें कि हम क्या हैं, किन्तु आज-कल आपकी अपेक्षा जिन्होंने कुछ अधिक सीख लिया है, उनके हाथ से हमारी रक्षा कीजिए। बड़ी आशा थी कि आपके ये देवता अमर हैं। किन्तु यदि कुछ दिन यही हाल रहा, हमारे मानव मित्र यदि साङ्घातिक स्नेह से कुछ समय तक हमारी व्याख्या और करते रहे तो यह आशा बिलकुल व्यर्थ होगी।"

बृहस्पति के मुँह से ये बातें सुनकर ब्रह्मा बाबा कुछ उत्तर नहीं दे सके। श्वेत केशावृत चारों मस्तक झुकाकर वे चिन्तित भाव से चुप हो रहे।

इसके अनन्तर देवताओं ने अपने-अपने पद के त्याग और परिवर्तन के सम्बन्ध में प्रार्थना की। विज्ञ प्रजापति और कामदेव ने देव-सभा में खड़े होकर कहा—सभी जानते हैं कि विवाह डिपार्टमेन्ट में चिरकाल से हमारा कुछ कर्त्तृत्व था। उसके लिए हमें न तो किसी तरह का नियमित नैवेद्य मिलता था और न ऊपर की कुछ आमदनी ही थी, किन्तु

कौतुक यथेष्ट था। अब रुपया नामक एक चक्राकार देवता ने, टकसाल से निष्कलङ्क पूर्ण चन्द्र के रूप में प्रकट होकर, एक प्रकार की प्रबल शक्ति से हमारा काम छीन लिया है। इसलिए उक्त डिपार्टमेन्ट से हमारा नाम ख़ारिज़ करके आज से उस प्रबल शक्तिशाली नये देवता का नाम दर्ज किया जाय।

सर्वसम्मति से यह प्रार्थना स्वीकृत हुई।

तब यमराज ने उठकर कहा—मर्त्य-लोक में अब तक मैं ही सबसे बढ़कर भय का कारण था, किन्तु वहां अब मेरी अपेक्षा अधिक भय उपजानेवाले जीव का जन्म हुआ है। इसलिए पुलिस-दारोग़ा के हाथ में अपना यम-दण्ड देकर मैं आज से अपना काम छोड़ना चाहता हूँ।

अधिकांश देवताओं के मत से यमराज का प्रस्ताव, नितान्त असङ्गत न होने पर भी, गुरुतर विषय जानकर आगामी अधिवेशन में अन्तिम निर्णय के लिए मुलतवी किया गया।

कार्त्तिकेय ने उठकर कहा—गुरुदेव की वक्तृता के अनन्तर मुझे कुछ अधिक नहीं कहना है। मैं देव-सेनापति हूँ। किन्तु देवताओं की रक्षा करना मेरे लिए असाध्य हो गया है, इसलिए या तो मेरा पद तोड़कर प्रबन्ध कम कर दीजिए या किसी सामयिक पत्र के सम्पादक को स्वर्ग-रक्षा के काम का भार सौंपिए। यही क्यों, मैं अपना चिरकाल का मयूर भी उन्हें मुफ़्त दे देने को तैयार हूँ। इसके परों से उनके विज्ञापन का बहुत कुछ काम चलेगा।

देवताओं की सम्मति से सेनापति की जगह तोड़ दी गई। अब मयूर की ख़ुराक कार्त्तिकेयजी को अपनी गाँठ से देनी पड़ेगी।

वरुण खड़े होकर आँसू बरसाते हुए बोले—अब मर्त्य-लोक में मेरी क्या आवश्यकता है? अविश्रान्तवाहिनी बोतलवासिनी वारुणी ने मुझे निर्मूल करने का सङ्कल्प किया है। इसलिए मैं अपनी मान-मर्यादा के साथ अलग हो जाना चाहता हूँ।

देवताओं ने बहुत सोच-विचार के अनन्तर जातीय दशा की समालोचना करके आख़िर निश्चय किया कि अभी ऐसा समय नहीं है। क्योंकि वारुणी की प्रखरता के निवारणार्थ अब भी निर्बल मनुष्य वरुण देव की सहायता के प्रार्थी होते हैं।

इसके बाद धर्म बोले—"लोकाचार को हम अपना अधीन कर्म्मचारी समझते थे, किन्तु वह हमसे राय लिये बिना ही जो उसके जी में आता है करता है। तो अब उसी स्वेच्छाचारी के लिए हमने अपना सिंहासन छोड़ दिया।" वायु ने कहा—"पृथिवी पर अब उनचास ओर से उनचास हवा बहती है। मैं अब फ़ुरसत लेना चाहता हूँ।" सूर्य ने कहा—"जन-समाज में जुगनुओं की ख़ूब वृद्धि हुई है। वे सोचते हैं कि सूर्य के न रहने पर भी हम अकेले काम चला सकते हैं। इसलिए संसार को प्रकाशित करने का भार उनको सौंपकर मैं अस्ताचल में विश्राम करना चाहता हूँ।" चन्द्रदेव ने शुक्ल प्रतिपदा की कृश मूर्त्ति धारण करके कहा—

"मर्त्य-लोक में कवि लोग अपनी प्रियतमा के चरण-नखों को मुझसे दस-गुनी प्रधानता देते हैं, इसलिए जब तक कवि-रमणियों के महलों में पादुकाओं का पूर्ण रूप से प्रचार नहीं होता है तब तक मैं अपने अन्तःपुर में ही रहकर समय बिताना चाहता हूँ।" भोलानाथ शिव ने अधमुँदे नयन किये ही कहा कि मुझसे भी बढ़कर गँजेड़ियों-भँगेड़ियों की अब संसार में कमी नहीं है। उन गँजेड़ियों और भँगेड़ियों को अपने प्रलय-कार्य का भार देकर मैं निश्चिन्त हो इष्टदेव का भजन करना चाहता हूँ। मैं यह भी ख़ूब जानता हूँ कि मेरे भूत-प्रेतों की भी वहाँ कोई ज़रूरत न होगी।

सबके पीछे जब शुभ्रवसना अमल-कमलासना सरस्वती देवी ने खड़ी होकर वीणा को लजानेवाले मधुर स्वर से देव-सभा में अपना निवेदन आरम्भ किया, तब देवताओं ने लम्बी साँस ली और इन्द्र के सहस्र नेत्रों के पलक गीले हो गये।

देवी ने कहा—अनेक कार्यों में बालकों को शिक्षा देने का काम इतने दिन तक मेरे अधीन था, किन्तु वह काम अब मैं किसी तरह नहीं चला सकूँगी। मैं स्त्री हूँ, मेरा हृदय कोमल है। मुझ माता के मन में बच्चों पर कुछ दया-माया है—उनके पढ़ने के लिए आज-कल जो पुस्तकें चुनी गई हैं, वह मैं नहीं पढ़ा सकूँगी। पढ़ाते समय मेरी छाती फटती है और बालकों की अत्यल्प बोधशक्ति नष्ट होती है तथा उत्साह भग्न हो जाता है। यह कठोर कार्य किसी बलिष्ठ पुरुष को

सौंप देना अच्छा है। इसलिए मैं इस सभा में सानुनय प्रार्थना करती हूँ कि यह भार यमराज को अर्पित किया जाय।

यमराज ने तुरन्त उठकर प्रतिवाद किया कि मेरी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि स्कूल के मास्टर और इन्सपेक्टर लोग तो मौजूद ही हैं।

शिशु-शिक्षा-विभाग में यमराज को नियुक्त करना फ़िज़ूल है, इस सम्बन्ध में देवताओं का कोई मत-भेद नहीं रहा।

बिना पैसे का भोज

आफ़िस की पोशाक में अक्षय बाबू

(हँसते हँसते) आज ख़ूब छकाया है। बाबू रोज़ हमारे कन्धे पर बिना दाम-कौड़ी के गलबाँही डाले घूमते थे और लम्बी-चौड़ी बातें मारते थे। महाशय क़रीब एक वर्ष से रोज़ कहा करते थे कि आज खिलावेंगे, कल खिलावेंगे, पर खिलाने का कभी नाम नहीं! जितनी उन्होंने आशा दी है उसके चौथाई परिमाण से भी यदि भोजन कराते तो उतने से तीन राजसूय यज्ञ हो सकते। जो हो, आज बड़े-बड़े प्रयत्न करके उनसे न्योता क़बूल कराया है। किन्तु दो घण्टे से बैठा हूँ, उनका दर्शन ही नहीं होता। ठग तो नहीं लिया? (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे तुम्हारा नाम क्या है, भुवन या मोहन?

ओ! चन्द्रकान्त। अच्छा भाई वही सही! कहो चन्द्रकान्त, तुम्हारे बाबू कब आवेंगे?

क्या कहा ? बाबू होटल से खाने की चीज़ें ख़रीदने गये हैं। तब तो आज विधिपूर्वक भोजन होगा! भूख भी खूब करारी लगी है! होटल से तरह-तरह की चीज़ें आवेंगी। आज सबेरे से दहनी आँख फड़क रही है। मालूम होता है, खूब लज़ीज़ खाना आवेगा। ओ चन्द्रकान्त, तुम्हारे बाबू कब गये ?

बहुत देर हो गई तो अब आने में ज़्यादा देर न होगी। तब एक तक चिलम तम्बाकू तो भर लाओ। बड़ी देर से तुमको पुकार रहा हूँ। तुम तो कुछ बोलते ही नहीं। तम्बाकू बाहर नहीं है ? बाबू बन्द करके रख गये हैं ? ऐसा तो कभी सुना नहीं। यह कुछ प्रामिसरी नोट नहीं है। बड़े आश्चर्य की बात है। अफ़ीम न हो तो न सही पर तम्बाकू बिना तो नहीं चल सकता। ओ मोहन, नहीं नहीं, चन्द्र-कान्त, तम्बाकू का कुछ उपाय करो। न हो तो माली से या और किसी से एक चिलम तम्बाकू माँग लाओ।

बाज़ार से ख़रीद लाना होगा ? पैसा चाहिए ? अच्छा भाई, यही सही। यह लो, एक पैसे की तम्बाकू झटपट ले आओ।

एक पैसे की तम्बाकू नहीं मिलेगी ? क्यों नहीं मिलेगी ? तुम मुझको लखनऊ का नवाब तो नहीं समझ बैठे हो ? सोलह रुपये तोलेवाली मुश्की तम्बाकू न मिलने पर भी किसी तरह मेरा काम चल जाता है। जाओ, एक पैसे में ही बहुत मिल जायगी।

हुक्का-चिलम भी ख़रीद करके लाना होगा? तुम्हारे बाबू क्या उसे भी लोहे के सन्दूक़ में बन्द कर गये हैं? बङ्गालबैङ्क में सेफ़डिपॅाज़िट क्यों नहीं कर आये? वाह रे मुन्तज़िम! बड़ी अच्छी जगह आ पड़ा हूँ। अच्छा यह लो, ट्रैम के लिए छः पैसे रख छोड़े थे। उदय के आने पर उससे सूद समेत वसूल कर लूँगा। यह शायद बाबू का बाग़ीचा है। इसका विश्राम-भवन कैसा है, ज़रा देख तो लूँ। राम राम! मकान तो बिल-कुल बेमरम्मत पड़ा है, शहतीर टूटकर कहीं सिर पर न गिर पड़ें। असबाब में यही एक टूटी चौकी है। यह मेरा भार न सँभाल सकेगी। तब से खड़ा ही हूँ, घूमते घूमते पैर दुखने लगे हैं। अब नहीं चला जाता; यहीं ज़मीन पर बैठता हूँ।

(धोती के अग्रभाग से धूल साफ़कर एक समाचार-पत्र बिछाकर बैठना और गुनगुना कर गाना।)

जो भगवान जुटावै रोज। बिना टके-पैसे का भोज॥
क्यों न खिलेगा बदन-सरोज। कौन करेगा किसकी खोज॥
हलुवा, पूरी और मलाई। तरह-तरह की बनी मिठाई॥
कलिया कोफ्ता ख़ूब उड़ाऊँ। मछली-मांस चबाकर खाऊँ॥
ह्विस्की की बोतल ढलकाऊँ। सोडा वाटर भी पी जाऊँ॥
खा भर पेट डकारें लेना। पैसा नहीं पास से देना॥
लो औरों के धन से काम। दे डालो 'विलसन' का दाम॥

क्यों रे! तम्बाकू लाया? हाथ में सिर्फ़ चिलम देखता हूँ। हुक्का क्या हुआ? यहाँ छः पैसे में हुक्का नहीं मिलता? चिलम

का ही दाम दो आना है! देखो बाबू चन्द्रकान्त, बाहर से मुझे जितना बेवकूफ़ समझते हो, मैं उतना असल में हूँ नहीं। शरीर जैसा मोटा है बुद्धि उसकी अपेक्षा कुछ सूक्ष्म है। अब समझ में आया कि तुम्हारे बाबू हुक्का-चिलम-तम्बाकू तक लोहे के बक्स में बन्द करके क्यों रख जाते हैं। केवल तुम्हारे जैसे रत्न को बाहर छोड़ जाना उनकी भूल है। मालूम होता है कि अब अधिक दिन तुमको बाहर नहीं रहना होगा। कम्पनी बहादुर को एक बार ख़बर लगी कि वे पहरा बिठाकर तुमको बड़ी हिफ़ाज़त से रक्खेंगे! जो हो, तम्बाकू पिये बिना तो नहीं रहा जाता। (हाथ में चिलम ले मुँह में लगाकर तम्बाकू पीने के साथ खाँसते-खाँसते) अरे दादा, यह कहाँ की तम्बाकू है। दम लगाने के साथ दम निकला जाता है। अगर स्वयं बाबा भोलानाथ इसकी दम लगावें तो उनका मगज़ फट जाय— नन्दी-भृङ्गी की तो कोई बात ही नहीं। रहने दो, कुछ काम नहीं। बाबू आ लें तो देखा जायगा। किन्तु बाबू के आने का तो कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। मालूम होता है, वह होटल में बैठकर रसगुल्ले उड़ा रहे हैं। इधर मेरे पेट में ऐसी आग लगी है कि धोती के जल जाने का डर है। प्यास भी कुछ कम नहीं लगी है। किन्तु पानी माँगते ही हमारे चन्द्र-कान्त बोल उठेंगे, गिलास ख़रीदकर लाना होगा; बाबू बन्द-कर रख गये हैं। कोई ज़रूरत नहीं, बाग़ से कच्चा नारियल मँगाकर जल पी लूँगा।

चन्द्रकान्तजी, एक काम कर दोगे ? बाग़ से एक नारियल तोड़कर ला सकते हो ? बड़ी प्यास लगी है।

क्यों ? नारियल क्यों नहीं मिलेगा ! बाग़ में तो कच्चे नारियल बहुत देख आया हूँ।

सब पेड़ और फल गिने हुए हैं ? क्या एक भी नारियल नहीं मिल सकता ?

पैसा चाहिए ? पैसा तो अब नहीं है ! तो रहने दो। बाबू के आने पर देखा जायगा। साथ में मासिक वेतन का रुपया है, किन्तु इसको भुनाने के लिए देने का साहस नहीं होता। कम्पनी के राज्य में अब भी एक इतना बड़ा डकैत बाहर रहकर दिन दहाड़े लोगों को लूटता है, यह मैं नहीं जानता था। जो हो, अब उदय के आने ही से रक्षा होगी।

मालूम होता है, आ रहा है। पैर की आहट सुन रहा हूँ। अब बच गया। उदय बाबू, उदय बाबू, वह तो नहीं है ! तुम कौन हो ?

बाबू ने तुमको भेज दिया है ? तुम्हारे आने की अपेक्षा वे स्वयं आते तो अच्छा होता ! भूख से तो मरा जा रहा हूँ !

होटल का बाबू ? क्लर्क बाबू ? आपसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। क्या उन्होंने कुछ खाने की चीज़ भेजी है ?

नहीं भेजी है। बिल भेजा है। बस, कृतार्थ कर दिया। अब क्या चाहिए ! जिस बाबू के नाम से बिल भेजा है वह तो यहाँ नहीं है।

नहीं जी नहीं, मैं वह शख़्स नहीं हूँ। यह तो एक नई ही आफ़त में आ फँसा! बाप रे! कैसी ग्रहदशा है। तुमको ठगने से मुझे क्या मिलेगा। मैं तो न्योता खाने के लिए यहाँ तीन घण्टे से बैठा हूँ—आप होटल से आ रहे हैं, यह देखकर भी मुझे बड़ी तृप्ति हो रही है। आपकी चादर अगर उबाली जाय तो उससे भी कुछ न कुछ—डरो मत, मैं आपकी चादर न लूँगा; किन्तु बिल भी नहीं चाहता।

यह तो बड़ी मुश्किल की बात है! नहीं जी नहीं, मैं उदय बाबू नहीं हूँ। मैं अक्षय बाबू हूँ। बड़ा आश्चर्य है! मैं अपना नाम नहीं जानता, जानते हो तुम! इतना बखेड़ा करने का क्या काम है। तुम नीचे जाकर बैठो, उदय बाबू अभी आवेंगे।

क्या सबेरे-सबेरे इसी लिए मेरी दहनी आँख फड़क उठी थी। होटल से खाना तो आया नहीं, बिल पहले ही आकर मौजूद हो गया।

"सखि, कि मोर करम भेल!
पियास लागिया जलद से बिनु, बजर पड़िया गेल।"

हे दैव, तुम्हारे ही विचार से समुद्र-मन्थन के समय एक ने अमृत पाया और एक ने विष। होटल-मन्थन में भी क्या एक आदमी मज़ा उड़ावेगा और एक आदमी को उसका बिल मिलेगा। बिल भी कुछ थोड़े दिनों का नहीं जान पड़ता!

तुम कौन हो? बाबू ने भेजा है? बाबू की यथेष्ट कृपा है! किन्तु उन्होंने क्या यह समझ लिया है कि तुम्हारा मुँह

देखने ही से मेरी भूख-प्यास दूर हो जायगी। तुम्हारे बाबू तो बड़े ही सभ्य जान पड़ते हैं।

क्या कहा, कपड़े का दाम ? किसके कपड़े का दाम ?

वाह साहब ! उदय बाबू कपड़ा ख़रीदेंगे और अक्षय बाबू उसका दाम देंगे। तुम्हारी भी अजब अक़्ल है।

सच कहो ? तुमने कैसे जाना कि मेरा ही नाम उदय बाबू है ? मेरे कपार में क्या साइन बोर्ड टँगा है ? मेरा अक्षय बाबू नाम क्या तुमको पसन्द नहीं हुआ ?

नाम बदल रहा हूँ ? अच्छा बाबू, शरीर बदलना तो सहज काम नहीं है। उदय बाबू के साथ मेरे अङ्ग का क्या मिलान देखते हो, बताओ ?

उदय बाबू को तुमने कभी आँख से नहीं देखा है ? अच्छा ज़रा सब्र करो, तुम्हारे मन का सन्देह अभी मिटाये देता हूँ, बहुत देर नहीं है। वे आते ही होंगे।

फिर कौन बला आई। महाशय का आना कहाँ से हुआ है ? मालूम होता है, आपको भी यहाँ का निमन्त्रण है।

मकान का भाड़ा ? किस मकान का भाड़ा चाहिए ? इसी मकान का ! किस हिसाब से भाड़ा लिया जाता है ?

सत्रह रुपये महीना। अच्छा तो हिसाब करके देखिए, साढ़े तीन घण्टे का भाड़ा कितना होगा।

महाशय, मैं आपसे मज़ाक नहीं करता। हृदय की वैसी प्रसन्न अवस्था नहीं है ! इस मकान में निमन्त्रित होकर मैं

साढ़े तीन घण्टे से हूँ। इसके लिए भी यदि भाड़ा देना हो तो हिसाब से जो उचित हो, ले लीजिए। पीने के लिए तम्बाकू तक मोल मँगानी पड़ी है !

जी नहीं, आप मुझको नहीं पहचान सके—आप कुछ धोखा खा गये हैं—मेरा नाम उदय नहीं, अक्षय है। इस तरह की मामूली भूल से अन्य समय में कुछ आता जाता नहीं। किन्तु मकान का भाड़ा चुकाते समय, माँ-बाप ने जो नाम दिया है उसी की रक्षा करके काम करना ठीक है !

मुझको मकान से बाहर निकल जाने को कहते हैं ? क्षमा कीजिए। यह मुझसे नहीं हो सकेगा ? साढ़े तीन घण्टे से यहाँ बैठा हूँ, पेट की ज्वाला से मर रहा हूँ। ज्योंही भोजन आने का समय हुआ त्योंही आप गाली देकर मुझको भगाना चाहते हैं। इस धमकी से मैं मकान छोड़कर चला जाऊँगा, आप ऐसा बेवकूफ़ मुझे न समझें। यहाँ बैठिए और जो कहना हो, कह डालिए। मैं पहले भोजन करूँगा तब मकान छोड़ूँगा।

बकते-बकते मेरा गला सूख गया, अब रक्षा नहीं है। भूख से तो आँख बैठी जा रही है। यह किसके पैर की आहट है ! उदय बाबू ? मुझ अन्धे की लाठी ! मेरा सात बादशाहत के मोल का मानिक, एक बार उदय हो, अब तो प्राण बचने का उपाय नहीं।

तुम कौन हो बाबू? यदि गालियाँ देनी हों तो यहीं बैठकर गाली बकना शुरू कर दो! दुहराने के लिए यहाँ और भी बहुत लोग मौजूद हैं।

हरि बाबू ने मुझको बुला भेजा है। सुनकर बड़ा सन्तोष हुआ! वे मुझको बहुत चाहते हैं इसमें सन्देह नहीं, किन्तु मेरे परम मित्र का—जिन्होंने न्योता देकर बुलाया है उनका—अभी तक दर्शन नहीं और जिनके साथ मेरा कभी कोई परिचय नहीं वे आज सबेरे से मेरी इतनी खोज कर रहे हैं, इसका कारण क्या! अच्छा महाशय, हरि बाबू नामक किसी सज्जन ने मुझे ऐसे असमय में क्यों बुला भेजा है और सहसा क्यों अधीर हो उठे हैं, क्या आप कह सकते हैं?

क्या कहते हैं! मैंने अपनी स्त्री के हाथ का कँगना गढ़ाने के लिए उनसे गहने का नमूना लाकर वापिस नहीं किया है? देखो, इस सम्बन्ध में मुझे बहुत कुछ कहना था, किन्तु अभी एक बात कहना ही यथेष्ट होगा। मैं किसी से कुछ गहना नहीं लाया, मेरे स्त्री भी नहीं है। इस सम्बन्ध में और भी बहुत सी बातें कहने को रह गईं, अभी नहीं कह सका। माफ़ कीजिएगा। भूख-प्यास के मारे मेरा कण्ठ सूखा जा रहा है, छाती फटी जा रही है। आप आध घण्टे तक यहाँ और ठहरें, सब समाचार ज्ञात हो जायगा। (ख़ूब ज़ोर से चिल्लाकर) अरे उदय, अरे हतभाग्य उदय! अरे उदयवा, अरे अभागे, पाजी, बदमाश, ठग, डैम, सुअर, स्टुपिड—

अरे मुझे कब से बैठाये हुए है ! भूख से पेट में खलबली मची है, प्यास से कण्ठ सूख रहा है, सिर में चक्कर आ रहे हैं। अरे दुष्ट, दग़ाबाज़, नीच, नराधम, कुलाङ्गार !

नहीं महाशय, मैंने आपको लक्ष्य करके कुछ नहीं कहा है। आप चञ्चल न हों। मैं भूख की बेचैनी से खिन्न होकर अपने प्यारे मित्र को पुकार रहा हूँ। आप आराम से बैठें। क्या अब नहीं बैठ सकते ? देरी अवश्य हुई है। इसलिए आपको अब घेर घारकर नहीं रखना चाहता। आज आप जाने की कृपा करें। आप लोगों के साथ मधुर सम्भाषण करने से इतना समय बड़े मज़े में कट गया था।

किन्तु अभी जो बात आपने कही है, वह कुछ परिमाण से बढ़ाकर ही कही है। अत्यन्त अन्तरङ्ग मित्र को भी कोई मनुष्य प्रेमवश साला कहने में कुण्ठित होता है, किन्तु आप लोगों ने बहुत थोड़ी देर के परिचय में ही जो इतनी बड़ी घनिष्ठता और आत्मीयता दिखलाई है इसके लिए मैं मन ही मन कुछ सङ्कुचित होता हूँ। सच मानिए, आप लोगों के प्रति मेरा कोई आन्तरिक असद्भाव नहीं किन्तु आप मुझसे जितना पाने की प्रत्याशा कर रहे हैं उतना देने में मैं बिलकुल असमर्थ हूँ !

महाशयो, आपसे यह कहना वृथा है कि, आप लोग दोनों समय नियमित भोजन करते हैं। आज तक शायद कभी आपको भूखे रहने की नौबत नहीं आई है। भूख लगने पर

मनुष्य का मिज़ाज कैसा हो उठता है यह आप नहीं जानते। इसी से ऐसी अवस्था में मुझको चिढ़ाने का आपने साहस किया है।

फिर वही बात! देखो बाबू, मेरे साथ वाहियात बात मत करो। शरीर देखकर भी कुछ लिहाज़ नहीं होता! बड़े कष्ट से क्रोध को दबाए बैठा हूँ, पीछे ख़ून-ख़राबा कर बैठूँ तो कोई आश्चर्य नहीं। अच्छा, मुझे चिढ़ाओ, देखूँ तुम लोगों में कितना सामर्थ्य है? मुझे किसी तरह नहीं चिढ़ा सकोगे। यह देखो, मैं गम्भीर भाव धारण करके बैठा हूँ। अरे दादा! ये सभी मिलकर मार-पीट करने की तैयारी कर रहे हैं! ख़ाली पेट पर मार नहीं सही जायगी। भूख ने सारी शक्ति हर ली है। अच्छा, आप लोग बैठिए। बतलाइए, किसका कितना बाक़ी है?—भाग्य से महीने का रुपया पाकेट में था, नहीं तो आज 'धनञ्जय' की भाँति मार खाकर ख़ाली पेट दौड़ लगानी पड़ती। अभी इनसे किसी तरह पिण्ड छुड़ाता हूँ, फिर उदय से रुपया वसूल कर लूँगा।

तुम्हारे पाँच रुपये भी बाक़ी नहीं हैं किन्तु तुमने पचपन रुपये की गालियाँ दे ली हैं—यह लो अपना रुपया।

क्लर्क बाबू, आपके होटल का बिल भी चुकाये देता हूँ। अगर कभी वक्त बे-वक्त आपके शरणापन्न होऊँ तो स्मरण रखिएगा।

तुम्हें तीन महीने का मकान-किराया चाहिए? एक महीने का अभी देता हूँ, बाक़ी फिर ले लेना। भाई तुमने तो

गालियाँ देकर मुझसे अपना सोलह आना पावना वसूल कर ही लिया है; रुपया भी लो। मालूम होता है, तुम्हारा मन कुछ साफ़ हो गया है, अब आशीर्वाद देकर घर का रास्ता पकड़ो।

सुनो भाई, आपका गहना लौटा देना सहज काम नहीं है। यदि मेरे स्त्री होती और तुम्हारा गहना उसे देता तो लौटाना कठिन न होता; और जब कि वह है ही नहीं और तुम्हारा गहना उसको दिया भी नहीं तब लौटा लाना और भी कितना कठिन है, यह तुम भी समझ सकते हो। फिर भी यदि तुम न मानोगे तो तुम्हारे हरि बाबू के पास मुझको अवश्य ही जाना होगा। किन्तु खाने की चीज़ें आती हैं या नहीं, यह देखे बिना मैं नहीं जा सकता। अरे भाई, अब नहीं सहा जाता। उदय का उदय होने में अभी बड़ा विलम्ब देखता हूँ। अरे चन्द्र, कहीं तुम भी अस्त हुए तो मेरी आँखों के सामने अन्धकार छा जायगा! चन्द्र, ओ चन्द्रकान्त! आ गये? अच्छा! तुम तो अपने बाबू को पहचानते हो। सच-सच कहो, वे आज, कल, या परसों इन तीन दिनों में होटल से कब लौटेंगे?

आज न लौटेंगे? ठीक है! इतनी देर बाद तुम्हारी इस बात का मुझे पूरा विश्वास हुआ। जो हो, बड़ी भूख लगी है, अब इन्तज़ार करने का समय नहीं रहा, गाली देने ही से क्या होगा। यह अठन्नी लेकर यदि झटपट कुछ खाने को ला दो तो जान बचे।

(आप ही आप) नवाबी करता फिरता है। काम-धन्धा कुछ नहीं, न कोई रोज़गार न कहीं से कुछ आमदनी ! हम सोचते थे, बाबा ! यह घर का काम कैसे चलाता है ! अब सब हाल मालूम हो गया। "घर में खर्च नहीं बाँकीपुर की सैर" वाली कहावत है। किन्तु रोज़-रोज़ इतनी गालियाँ खाकर, इतने बिल टालकर, इतने लोगों की आँखों में धूल झोंकना—उन्हें रोज़-रोज़ यों ही कोरे हाथ लौटाना साधारण काम नहीं है। इससे तो मज़दूरी करके खाना अच्छा है। इसकी अपेक्षा कोल्हू चलाने में सुख है। उदय ! कोल्हू का बैल अच्छा, पर तुम अच्छे नहीं।

क्योंजी ! सिर्फ़ चने ले आये ! और कुछ नहीं मिला ? कुछ पैसे फिरे हैं ? नहीं ! अच्छा, तो चने ही दो ! (चबाना)

सच कहता हूँ चन्द्रकान्त ! भूख की ज्वाला में ये चने अमृत से मीठे मालूम होते हैं। बहुत न्योता खाया होगा, किन्तु ऐसा सुख और स्वाद कहीं नहीं पाया। तुम सुधाकर हो, किन्तु आज तुममें कलङ्क का ही भाग कुछ अधिक देख पड़ा। देखता हूँ, कच्चा नारियल भी लाये हो, इसके लिए भी क्या कुछ देना होगा ?

नहीं ! मालूम होता है, शरीर में कुछ दया-मया है। अब यदि किराये पर एक गाड़ी ला दो तो मैं धीरे-धीरे चला जाऊँ।

यहाँ गाड़ी नहीं मिलती ? तब तो भाई तुमने बड़ी विपद् में डाला। मैं यह थोड़े से चने चबाकर, भूख-प्यास का

मारा, डेढ़ कोस रास्ता पैदल नहीं चल सकूँगा। उधर से तो भोजन करने की आशा पर पैदल ही आया था। क्या करूँगा, किसी तरह जाना ही होगा!

हाय-हाय! आफ़त पर आफ़त! फिर इसी समय हरि बाबू के यहाँ भी जाना होगा। चन्द्र, तुमने आज मेरा बड़ा उपकार किया है। अब और कुछ करना न होगा, इस भले आदमी के लड़के को सिर्फ़ इतना ही समझा दो कि मैं उदय बाबू नहीं, मैं अहीरी टोले का अक्षय बाबू हूँ।

वह तुम्हारी बात का विश्वास नहीं करेगा? इसके लिए मैं उसे अधिक दोष नहीं दे सकता। मालूम होता है, वह तुमको बहुत दिन से पहचानता है। जो हो, अब मुझमें झगड़ा करने की ताक़त नहीं। धीरे-धीरे हरि बाबू के यहाँ जाना ही ठीक है। अच्छा बाबू, मैं एक बात पहले ही तुमसे कह रखता हूँ। मेरी जो हालत देख रहे हो, उससे रास्ते में यदि कुछ हो जाय तो दाह-कर्म का ख़र्च तुम्हारे माथे पड़ेगा।

चन्द्र! फिर तुम अब क्या हाथ बढ़ाते हो? तुम लोगों के शिष्ट व्यवहार से जैसा उत्तम न्योता आज मैंने खाया है वह जन्म भर याद रहेगा! और भूख भी ज्यादा दिनों तक मेरे पास नहीं आवेगी। तुम्हें अब और क्या चाहिए?

ओह! बख़शीश! हाँ, यह दे डालना ही अच्छा है। जब इतना कर ही चुका हूँ तब सबके अन्त में इतनी त्रुटि क्यों रक्खूँ। किन्तु मेरे पास अब एक ही रुपया बचा है। उसमें

बारह आने मैं गाड़ो-भाड़ा के लिए रख देना चाहता हूँ। तुम्हारे पास रेज़गारी हो भुना—

रेज़गारी नहीं है? (पाकेट उलटाकर बाक़ी रुपया निकालकर) यह लो बाबू! तुम्हारे घर से निकलता हूँ। बस, एकदम "गजभुक्त-कपित्थवत्।"

किन्तु मैंने जो इतना रुपया दिया है, वह उदय से फिर कैसे वसूल किया जायगा। इसका उपाय क्या है? कोई क़ीमती चीज़ मिल जाय तो उसे रख लूँ। क़ीमती चीज़ों में तो यहाँ एक चन्द्रकान्त देख पड़ता है, किन्तु इसे जैसा गुणाकर पाया उसका संग्रह करना मेरा काम नहीं। यह चाहे तो मुझी को बेच ले।

(कोने में ज़ोर से एक दराज़ खोलकर) वाह, जो ढूँढ़ता था वह मिल गया! चेन भी बढ़िया है। तो घड़ी और चेन दोनों को अपने हाथ में किये लेता हूँ।

क्योंजी चन्द्रकान्त, इतने घबराये हुए क्यों हो?

पुलिस! पुलिस आ रही है!

मुझको भी भागना होगा? क्यों, मैंने क्या दुष्कर्म्म किया है? केवल एक महाशय के निमन्त्रण की रक्षा करने आया था, उसकी यथेष्ट शान्ति भी कर चुका हूँ।

सचमुच ही वही देख रहा हूँ! अरे चन्द्र, कहाँ गये? हरि बाबू के उस आदमी को भी नहीं देखता हूँ! क्या सभी भाग गये!

देखो जी ! मेरा हाथ मत पकड़ो, अच्छा नहीं होगा ! मैं अशराफ़ आदमी हूँ ! चोर जालिया नहीं हूँ ।

ओफ़ ! यह क्या करते हो । चोट लग जायगी । आज दिन भर से भूखा हूँ सिर्फ़ चने चबाकर भोजन के इन्तज़ार में बैठा हूँ । तुम लोगों की यह हँसी-तफ़रीह इस वक्त़ अच्छी नहीं लगती ।

सिपाही दादा, चाहो तो मिठाई खाने के लिए कुछ ले लो । (पाकेट में हाथ डालकर) हाय ! एक पैसा भी पास नहीं है । दारोग़ासाहब, अगर आप चोर पकड़ना चाहते हैं तो चलिए, मैं आपको दिखाये देता हूँ । जब से जेल बना है तब से शायद ऐसा चोर जेल में न गया होगा ।

क्या किया है मैंने ? जीवनलाल के नाम से दस्तख़त करके हैमिल्टन की दूकान से घड़ी लाया हूँ ? आपने अफ़सर होकर एक रईस को इतनी जल्दी इल्लत लगा दी !

यह क्या ! चेन पकड़कर मत खींचो । यह घड़ी मेरी नहीं है । अगर चेन टूट जाय तो मुश्किल में पड़ना होगा ।

क्या यह उसी हैमिल्टन की घड़ी है ? अरे दादा ! सच कहो । तो ले जाओ, अभी ले जाओ । किन्तु घड़ी के साथ-साथ मुझे क्यों खींचते हो ? मैं तो सोने की चेन नहीं हूँ । हाँ, मैं सोने का अक्षय हूँ, किन्तु वह भी केवल अपने माँ-बाप के लिए । आप लोगों के आगे मैं "अक्षय" के सिवा और कुछ नहीं हूँ ।

अगर आप किसी तरह नहीं छोड़ सकते तो चलिए। जहाँ ले जाना हो, ले चलिए। मैं चलने को उद्यत हूँ। मुझसे सभी लोग प्रेम-भाव रखते हैं, इस बात का आज अच्छा परिचय मिला। अब आपके मजिस्टर के प्रेम-भाव से किसी तरह बच निकलूँ तभी इस यात्रा में प्राण बचे (गुनगुनाकर)

जो भगवान जुटावे रोज।
बिना टके-पैसे का भोज॥

नया अवतार

पहला अङ्क

नन्दकुमार उपाध्याय

(आपही आप) रुद्र बख़शी, तुमने ब्राह्मण की माफ़ी का तालाब हड़पकर अपने घर के हाते में मिला लिया है! देखूँगा, तुम कैसे उसका उपभोग करते हो! इस तालाब में दोनों समय छत्तीस जात को स्नान कराऊँ तब मैं ब्राह्मण का बच्चा! (उपस्थित पड़ोसियों की ओर देखकर) तुम लोग तो सब सुन ही चुके हो। वह स्वप्न की बात याद आने से अब भी देह काँप उठती है। क्या कहूँ, भाई तीन रात तक लगातार एक ही स्वप्न देखा। गङ्गा माई घड़ियाल पर सवार हो मेरे सिरहाने आकर बोलीं—"अरे बेटा नन्द, तुझे कुबुद्धि ने आ घेरा था, इसी से तू रुद्र बख़शी के साथ तालाब का मामला करने गया

था। जानता है, रुद्र बख़शो कौन है? सत्ययुग में जो भगी-रथ था उसी ने आज बख़शी के घर में अवतार लिया है। हुगली-पुल के ऊपर जब से गाड़ी चलना शुरू हुआ है तभी से मैं इस तालाब में आ गई हूँ।" तब मेरे मन में आया—अरे बाप! मैंने यह क्या किया? जो स्वयं कलियुग का भगीरथ है, उसी के साथ गङ्गा के दख़ल के लिए अदालत में मुक़द्दमा! हा! ऐसा पाखण्ड किया। अब समझ में आ गया कि मैं मुक़द्दमा कैसे हार गया और तुम सभी पड़ोसवाले हलफ़ लेकर क्यों झूठी गवाही दे आये! यह सब देवता की करतूत है। तुम लोगों के मुँह से बेरोक झूठी बात, गोमुख से गङ्गा-धारा की तरह, निकल चली। मैं संसारी पापिष्ठ जीव हूँ, इसी से सच्ची बात नहीं समझ सका, माया से अन्ध हो रहा और रुपये लूटकर वकील खा गये। (आँसू बहाना, और भक्ति-विह्वल नर-नारियों का भगवन्नाम-स्मरणपूर्वक कलियुगी भगी-रथ के दर्शन को जाना।)

दूसरा अङ्क

रुद्रनारायण बख़शी

(आप ही आप) इसी से तो! मेरे मन में बचपन से ही एक विचित्र धारणा थी कि मैं साधारण मनुष्य नहीं हूँ। इतने दिनों में उसका कारण मालूम हुआ। इसी से ब्राह्मण के इस तालाब पर बहुत दिनों से मेरा जी लगा था। रह-रहकर

मेरे मन में यही बात आती थी कि किसी तरह इस तालाब को घेर न सकने के कारण स्त्रियों और बालकों को बड़ी असुविधा हो रही है। फिर भी खुलासा नहीं जान पड़ता था कि मैं भगीरथ हूँ, और गङ्गा माता अब भी मुझको नहीं भूल सकी हैं। ओह ! मैंने उस जन्म में जो तपस्या की थी उसकी अपेक्षा इस जन्म के झूठे मुक़द्दमे कहीं बढ़कर हैं।

(भक्तमण्डली की ओर मुसकुराकर) क्या मैं यह नहीं जानता था ? किन्तु तुम लोगों के निकट प्रकट नहीं करता था—क्या जाने विश्वास न करो। कलिकाल में देवताओं और ब्राह्मणों पर तो किसी की भक्ति नहीं रहती। इसके लिए डरो मत, मैंने तुम लोगों के सब अपराध क्षमा कर दिये। तुम कौन हो ? पैर की धूल चाहिए ? अच्छा यह लो। (पैर फैलाना) तुम क्या चाहते हो, चरणोदक ? आओ, आओ, ले लो। लाओ गिलास, यह लो, इसे पी जाओ। भोर से चरणोदक देते-देते मुझे सरदी हो गई है। सिर भारी हो गया है। तुम लोग बराबर आया करो, कुछ डर नहीं। इतने दिन तक मुझको नहीं पहचान सके—यह तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने सोचा था, यह बात तुम लोगों पर ज़ाहिर नहीं करूँगा जैसे चलता है वैसे ही चलेगा। तुम लोग मुझे माधव बख़शी का लड़का रुद्र बख़शी ही समझा करो। (मुसकुराना) किन्तु गङ्गामाता ने जब स्वयं ज़ाहिर कर दिया तब मैं अपने को नहीं छिपा सका। बात सर्वत्र फैल गई है।

अब किसी तरह छिपी नहीं रही। यह देखो न, 'हिन्दू-प्रकाश' में क्या लिखा है। अरे रामभजन, वह काग़ज़ झट ले तो आ। देखो, "कलियुग का भगीरथ और भीमनगर की भागीरथी।" लेखक की लेखन-शैली बड़ी चमत्कार-पूर्ण है। और परसों की 'भारत-हितैषिणी' ले आ, उसमें भी बड़े-बड़े दो लेख छपे हैं। क्या, नहीं मिलती? मालूम होता है कहीं खो दी! जो न मिली तो समझ रख तेरी दो हड्डियाँ एक जगह दुरुस्त नहीं रहेंगी; उस दिन तेरे हाथ में देकर कहा था न, इसे आलमारी में हिफ़ाज़त से बन्द कर रख दे। पाजी, बे-ख़बर, उल्लू, मेरा काग़ज़ कहाँ खो दिया? जल्द खोज ला। जहाँ से हो, ढूँढ़ निकाल; नहीं तो तेरा हाथ तोड़ डालूँगा। ओफ़! याद आई। मैंने अपने कैश-बक्स के भीतर रख दिया था। मैं भूल गया था। हरिभूषण, इन लोगों को पढ़कर सुना तो दो; मुझे हिन्दी पढ़ने का अच्छा अभ्यास नहीं है। यह कौन, मोती ग्वालिन? आओ, आओ मैं चरणरज देता हूँ, तुम दूध का दाम लेने आई हो? शायद तुमने अब भी नहीं सुना है? नन्दजी से गङ्गामाता ने स्वप्न में क्या कहा है सो तुम्हें कुछ भी मालुम नहीं है। बेटी, तू मेरे तालाब का जल दूध में मिलाकर मेरे हाथ बेचती है, उस जल का माहात्म्य जानती है? नहीं जानती तो किसी से पूछ ले, मालूम हो जायगा। दूध का हिसाब अभी मुलतबी रख। चरणरज लेकर, मेरे घर के सामने के घाट पर झट एक गोता लगा

आ। अच्छा, अब मैं जाता हूँ। क्या जानता नहीं हूँ कि वक्त् हो गया है। रसोई ठण्डी हो गई। कहो मैं क्या करूँ ? चरणरज लेने की आशा से लोग दूर-दूर से आये हैं, इनको विमुख कैसे लौटाऊँ ? अच्छा तो अभी जाता हूँ। अरे राम-भजन, तू यहाँ हाज़िर रह। जो मुझको देखने आवें उन्हें बिठाना, मैं अभी आता हूँ। ख़बरदार, देखना कोई बिना दर्शन पाये ही न लौट जाय। उनसे कहना, भगीरथ देवता को भोग लग रहा है। मैं थोड़ा सा दूध-भात खाकर अभी आता हूँ। समझ गया न ?

महावीर, तू तो एकबारगी अकड़कर खड़ा हो रहा ? क्या तेरा सिर झुकता ही नहीं ? तेरा अहङ्कार तो कुछ कहने का नहीं। तू तो बड़ा घमण्डी जान पड़ता है। तुझ में भक्ति ज़रा भी नहीं है। पाजी साले निकल यहाँ से, नहीं तो जूता मारकर यहाँ से भगाऊँगा। तू नहीं जानता, सभी लोग मेरी भक्ति करते हैं और तू ऐसा किरिस्तान हो गया है कि मुझे देखकर प्रणाम भी नहीं करता ! तुझको परलोक का डर नहीं है, निकल मेरे यहाँ से।

बेटा उमाशङ्कर, धिक्कार है तुमको ! तुम्हारी इतनी बड़ी उम्र हुई, तो भी तुमने नहीं जाना कि किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। जो भगीरथ मर्त्यलोक में गङ्गा को लाया था उसकी कथा क्या महाभारत में नहीं पढ़ी है ? भूलते हो—ऐरावत नहीं, वह भगीरथ ! मुझे वही भगीरथ

समझो। स्मरण रहेगा न, मैं वही भगीरथ हूँ। भगीरथ का उपाख्यान मास्टर से पढ़ लेना। आओ बेटा, तुम्हारे माथे में चरण-रज लगा दूँ।

अच्छा, रसोई की थाली कहाँ है, जल्दी लाओ। मैं अब धैर्य नहीं धर सकता। देशदेशान्तर से लोग आ रहे हैं, मेरे चरणों की रज लेने के लिए लोगों की भोड़ लगी रहती है। कहो गृहदेवी, इतना क्रोध क्यों! क्या हुआ है? ज़नाने घाट पर स्नान करने को लोग हमेशा भीड़ लगाये रहते हैं! तो क्या नहाना, कपड़े धोना, बर्तन मलना, जल लाना सब बन्द हो गया है? कहो मैं क्या करूँ? मैं स्वय भगीरथ होकर गङ्गा से तो किसी को वञ्चित नहीं कर सकता। यदि वञ्चित करूँ तो मैं इतनी तपस्या कर, इतना कष्ट सहकर गङ्गा को क्यों लाया? तुम लोगों के मैले कपड़े साफ़ करने ही के लिए! जब मैं ब्राह्मण के साथ मुक़द्दमा लड़ता था तब तुम इसी आशा में ध्यान लगाये बैठी थीं पर असल बात को मैं जानता था या गङ्गामाता जानती थीं। ओफ़, तुम्हारी इतनी बड़ी शेख़ी! तू विश्वास नहीं करती, जानती नहीं कि तुझसे ब्याह कर मैंने तेरे चौदह पुरुषों का उद्धार कर दिया है। बाप के घर जायगी! तो चली क्यों नहीं जाती? तुझे रोकता कौन है? किन्तु मरते समय मैं तुझे अपनी इस गङ्गा के पास न आने दूँगा, यह याद रखना। भात और है न। नहीं? मैंने तुझसे कुछ अधिक रींधने को कह दिया था। लोग मेरा

प्रसाद ले जायँगे। देश-विदेश से कितने ही लोग आये हैं। तुमने जितना भात राँधा है उसका एक-एक चावल देने से भी शायद पूरा नहीं होगा। रसोई में जितना भात है सब ले आओ। तुम लोग चिउड़ा मँगा लो; तालाब से गङ्गाजल मँगाकर भिगो करके खा लो। क्या करूँ, दूर-दूर से लोग नाम सुनकर प्रसाद लेने को आये हैं, उन्हें विमुख नहीं लौटा सकूँगा। क्या कहा? मेरे घर आने से तुम्हारा जी जलता रहता है। क्या कहूँ, तुम मूर्ख स्त्री हो; देश के अच्छे-अच्छे पण्डितों से तुम एक बार यह बात पूछ देखो। वे तुरन्त तुम्हें सुना देंगे कि साठ हज़ार सगर-सन्तान जलकर भस्म हो गई थी, उस भस्म के लिए जिसने प्राण अर्पण कर दिया था वह तुम्हारा जी जलावेगा! यह कभी हो नहीं सकता। किसी भी शास्त्र में यह बात नहीं मिल सकती। तुम गाली दो, जो जी में आवे बको, मैं अपने भक्तों के पास जाता हूँ। (बाहर आकर) देरी हो गई। हवेली के भीतर स्त्रियाँ किसी तरह छोड़नेवाली नहीं थीं। चरण-रज लेने और पैर-पूजने में इतनी देर कर दी। मैं कहता ही रह गया कि रहने दो, अब हो गया—किन्तु वे कब छोड़ती थीं। आओ, अब तुम लोग एक-एक कर आओ। जिन लोगों को चरण-रज लेनी हो वे लेकर घर जायँ। क्यों रे बिहारी, आज मुक़द्दमे की तारीख़ है न? मैं तो जा नहीं सकता। दर्शन करने के लिए बहुत लोग आये हैं। इन्हें छोड़कर कैसे जाऊँगा। एक-तरफ़ा

डिगरी होगी। होने दो, बताओ क्या करूँ। यहाँ न रहने से भी तो एकतरफ़ा है। बिहारी, तू बड़ा उजड्डु है। जाते समय प्रणाम नहीं करता। ऐसा करने से तुम रसातल को जाओगे! आओ, प्रणाम करो। यह लो, चरणरज देता हूँ। माथे में लगाकर जाओ।

तीसरा अङ्क

उपाध्यायजी, मेरे घर के समीप इसी तालाब में गङ्गामाई न आतीं, दो एक रस्सी दूर ही रहतीं तो अच्छा होता। भाई, तुम तो स्वप्न देखकर ही अलग हो गये। मुझे तो दिन-रात असह्य कष्ट भोगना पड़ता है। दूध, बताशे और फूल-पत्ती के सड़ने से तालाब का पानी दुर्गन्धित हो गया है—मछलियाँ मर-मरकर पानी पर उतराने लगी हैं—जिस दिन दखनही हवा बहती है उस दिन मालूम होता है मानो नरक-कुण्ड के दक्खिन ओर के सभी दरवाज़े खोल दिये गये हैं। जन्म-काल का दूध मुँह की राह पेट से बाहर होना चाहता है। बाल-बच्चे जितने दिन यहाँ रहे, बीमार ही रहे। कलियुग का भगीरथ होने पर भी डाक्टरों को फ़ीस देते-देते मेरा सर्वस्वान्त हो चला है। वे सभी यमदूत हैं, भक्ति करना तो वे जानते ही नहीं। स्वयं गङ्गा माता को देखने आकर पूरी विज़िट वसूल कर लेते हैं। यह भी सह्य है। परन्तु घर की खिड़की के पास ही जो देश-विदेश के मुर्दों का जलना

आरम्भ हुआ है, यह किसी तरह सह्य नहीं। दिन-रात चिता धधकती रहती है। आस-पास जितने पड़ोसी थे, वे सभी उठ गये। मुहल्ला खाली पड़ा है। रात में जब "राम नाम सत्य है" की भयङ्कर आवाज़ कान में पड़ती है और गीदड़ चिल्लाते हैं तब मारे डर के लहू सूख जाता है। स्त्री तो बाप के घर चली गई है। घर में दास-दासी क्षण भर भी नहीं ठहरते। भूतों के भय से दिन-दोपहर में भी दाँत से दाँत चिपकाये रहते हैं। घर में कोई नहीं है जो खाने के लिए दो रोटियाँ बना दे। रात को अपने पैरों की आहट सुनकर भी कलेजा धड़कने लगता है। मैं घर में अकेला रह गया हूँ। गङ्गा-यात्रियों के स्थान से, रह-रहकर, केवल तारक ब्रह्म का नाम सुनता हूँ। सुनते ही शरीर सन्न हो जाता है। घर छोड़कर कहीं जा भी नहीं सकता। चारों ओर मेरा भगीरथ नाम प्रसिद्ध हो गया है। सभी लोग मेरा दर्शन करना चाहते हैं। उस दिन पश्चिम से दो आदमी आये थे। उनकी बात ही समझ में नहीं आती थी। आये थे दुष्ट भक्ति करने किन्तु मेरा लोटा-थाली चुरा ले गये! यहाँ से अन्यत्र चले जाने पर, मेरा पता न पाकर, शायद कितने ही लोग वापस लौट जायँ। इधर घर का काम-काज देखने के लिए समय नहीं मिलता। मेरी ज़मींदारी का लगान बाक़ी है। सुना है, ज़मीदार नालिश करना चाहता है। डर से, अनियत दिन-चर्या से और बीमारी से शरीर

रोज़-रोज़ सूखा जा रहा है। डाक्टर भय दिखा रहा है, इस स्थान को न छोड़ूँगा तो मैं अधिक दिन नहीं जी सकूँगा। क्या करूँ भाई ! तुम्हीं कहो, रुद्र बख़शी था, सुख से समय बिता रहा था। किसी तरह का खटका नहीं था। किन्तु जब से भगीरथ हुआ हूँ तब से घर का कोई काम नहीं सँभाल सकता। मेरा सोने का घर बिलकुल श्मशान हो गया है। जितने समाचार-पत्र हैं, वे सभी आजकल मेरे पीछे पड़े हैं। वे कहते हैं कि सब झूठ है। उन लोगों पर हतक-इज़्ज़ती की नालिश करने के लिए मैं वकील से राय लेने गया था। वकील ने कहा, तुम्हें अपने को भगीरथ प्रमाणित करने के लिए सत्ययुग से साक्षी लाना होगा—स्वयं व्यासदेव के नाम सम्मन ज़ारी करना होगा। यह सुनकर मुझे भगीरथ होने का विश्वास जाता रहा। यहाँवालों के मन में भी सन्देह हो गया है; मोती ग्वालिन के साथ एक तरह से तय हो गया था कि मैं चरणोदक दूँगा और वह दूध देगी। पर आज दो दिन से वह अपना हिसाब करने आती है। उसके भाव से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जो मैं रुपये के बदले उसे चरण-रज दूँगा तो वह भी मेरे ऊपर पैरों की धूल झाड़े बिना नहीं रहेगी। अतएव मैं डर से कुछ भी नहीं बोल सकता। तालाब तो हाथ से गया ही, मेरे लड़के-बाले और स्त्री भी मुझे छोड़-कर चली गई। नौकर और नौकरानी भी भाग गई हैं। पड़ोसी भी अन्यत्र जा बसे हैं। मेरा भगीरथ नाम रहेगा

या नहीं, इसमें भी सन्देह है। क्या अकेली गङ्गा माता मुझे किसी तरह नहीं छोड़ेगी ? क्या गङ्गा माता से ही मेरे घर-बार का काम चलेगा ? अब रास्ते पर घूमते समय लड़कों ने मज़ाक़ उड़ाना आरम्भ किया है। कहते हैं, रुद्र बख़शी को गङ्गालाभ हुआ है। ऐसी विपत्ति में पड़ गया हूँ जिसका पार नहीं। भई, आपको फिर एक बार सपना देखना पड़ेगा। दुहाई आपकी, और दुहाई गङ्गामाई की। हुगली के पुल के नीचे रहने में उनको असुविधा हो तो देश में बड़ी-बड़ी झीलें, नहरें और तालाब हैं उनमें वे स्वच्छन्दता-पूर्वक रह सकेंगी। मेरे इस तालाब का पानी जैसा गन्दा होता जा रहा है उससे दो दिन बाद उसका वाहन भी मर कर उतराने लगेगा। मेरे सदृश भगीरथ बहुत मिलेंगे किन्तु ब्राह्मण और कायस्थ के घर में ऐसा वाहन नहीं मिलेगा। इस नई गङ्गा के किनारे उसका प्यारा भगीरथ भी अब अधिक दिन ठहरेगा, ऐसी आशा कोई डाक्टर, वैद्य नहीं दिलाता। सत्ययुग के नाम के लिए मुझे मोह ज़रूर होता है; किन्तु मैंने अच्छी तरह सोचकर देखा है भाई, इस कलियुग के सुख-संसार का भी मोह नहीं छूट सकता। इसलिए निश्चय किया है कि तालाब तुम्हें लौटा दूँगा, किन्तु गङ्गा माता को यहाँ से कुछ दूर जाकर ही रहना होगा।

अरसिक को स्वर्ग-प्राप्ति

स्वर्गीय मुंशी गोकुलनाथ

इन्द्रलोक

गोकुलनाथ—(आपही आप) मैं देखता हूँ कि स्वास्थ्य के लिए स्वर्ग अच्छी जगह है। इस विषय में प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। बहुत ऊँचे स्थान में रहने के कारण आक्सिजन ख़ूब विशुद्ध पाया जाता है, और रात न होने से नन्दन वन की तरुलताएँ कार्बोनिक एसिड गैस छोड़ने को समय नहीं पातीं। इससे हवा भी ख़ूब साफ़ रहती है। धूल भी नहीं, इससे उसके द्वारा उत्पन्न होनेवाले रोगों की आशङ्का तक नहीं है। किन्तु यहाँ विद्याभ्यास का जैसा अनादर देखता हूँ उससे मुझे सन्देह होता है कि धूल के साथ मिलकर रोग का बीज उड़ता है, यह बात अब भी इनके कान तक पहुँची है या नहीं। ये उसी एक सामवेद का गान लिये पड़े हैं, इस कारण इनका इन्टेलेक्चुअल मूवमेन्ट और अधिक नहीं बढ़ा। पृथिवी द्रुत वेग से आगे को चल रही है। पर स्वर्ग जैसा था वैसा ही है। देवता लोग विद्या से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते, वे स्वर्ग के निरीक्षक मात्र हैं।

(बृहस्पति की ओर देखकर) अच्छा, गुरु महाशय, यह जो सामवेद का गान हो रहा है उसे आप तो बैठे-बैठे मुग्ध होकर सुन रहे हैं; किन्तु किस समय यह पहले पहल बना, इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण आप संग्रह कर सके या नहीं?—क्या

कहा ? स्वर्ग में आप लोगों का इतिहास नहीं ! तो आप लोगों का सभी नित्य है ?—हर्ष का विषय है। देव-बालकों को तारीख़ याद नहीं करनी पड़ती किन्तु विद्या यहाँ तक सीख लेते हैं जिसमें कोई विषय प्रायः अधूरा नहीं रहने पाता। इतिहास-शिक्षा की उपयोगिता चार प्रधान श्रेणियों में बाँटी जा सकती है।—प्रथम, क—

आपका ध्यान इधर है या नहीं ? (आप ही आप) जो गान सुनने में मत्त हो रहा है वह इधर क्यों ध्यान देगा ? जब से पृथिवी छोड़कर आया हूँ तब से यहाँ किसी को यदि एक बात भी सुना सकता ! कुछ कहूँ तो उसे कोई सुनता है या नहीं, यह मुँह देखने से भी नहीं जाना जाता। कोई बात कहने पर, कोई उसका प्रतिवाद भी नहीं करता और किसी की बात का प्रतिवाद करने पर उसका जवाब भी किसी से नहीं मिलता। सुना है, मुझको यहाँ साढ़े पाँच करोड़ साढ़े पन्द्रह लाख वर्ष रहना होगा। हाय ! तब तो मैं गया। आत्महत्या करने से भी छुटकारा पाने का सुभीता नहीं—यहाँ की साप्ताहिक मृत्यु-तालिका की खोज करने पर मालूम हुआ कि यहाँ मृत्यु होती ही नहीं। अश्विनीकुमार नामक दो वैद्यों ने जो पद पाया है उनको यदि नियमित ख़ुराक़ न मिलती तो सारा स्वर्ग घूम आने पर भी उन्हें एक पैसा विज़िट न मिलती। तो वे यहाँ करते क्या हैं, यह हमारी (मनुष्य की) समझ में नहीं आता। किसी को ख़र्च का हिसाब नहीं

देना पड़ता ; जो जिसके मन में आता है, करता है। एक म्युनिसिपैलिटी रहती और नियमानुसार काम होता तो सबके पहले मैं ही इन दोनों हेल्थ आफ़िसरों का पद उठा देने के लिए लड़ता। यह जो सभा के बीच रोज़-रोज़ अमृत ढलकाया जाता है, इसका कुछ हिसाब भी है ! उस दिन मैंने देवी शची से पूछा, स्वर्ग का समस्त भाण्डार तो आप के ज़िम्मे है; पक्की बही में या खसरा में उसका कोई हिसाब तो आप अपने पास रखती हैं ? दस्तख़ती चिट्ठी, रसीद या किसी तरह का कोई सुबूत तो रक्खा ही जाता होगा ? इस पर भी शची देवी कुछ न बोलीं ! शायद वह मन ही मन रुष्ट हो गईं। स्वर्ग की सृष्टि जब से हुई है तब से शायद ऐसा प्रश्न किसी ने न पूछा होगा। जो पब्लिक की वस्तु है उसकी सप्रमाण जवाबदेही का काग़ज़ रहना चाहिए। वह इनमें किसी के पास नहीं देख पड़ता। असंख्य धन है, इससे क्या बेशुमार ख़र्च करना चाहिए ? जब मुझको यहाँ बहुत दिन रहना ही है तो मैं स्वर्ग का सारा सुधार बिना किये नहीं छोड़ूँगा। मैं देखता हूँ, शुरू में आन्दोलन की बड़ी आवश्यकता है—यह बात स्वर्ग में है ही नहीं। सभी देवता सन्तुष्ट होकर चुपचाप बैठे रहते हैं। कोई कुछ नहीं करता। इन तेंतीस कोटि देवताओं को एक बार यथारीति विचलित कर सकने पर कुछ काम बनेगा। यहाँ की लोक संख्या देखकर ही मैं समझ गया था कि यहाँ एक उच्च श्रेणी का दैनिक या साप्ताहिक समा-

चार-पत्र अच्छी तरह चलाया जा सकता है। यदि मैं सम्पादक हो सकता तो और दो उपसम्पादक पाते ही काम शुरू कर देता। पहले तो नारद मुनि के द्वारा ख़ूब विज्ञापन बँटवाता; इसके अनन्तर विष्णुलोक, ब्रह्मलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक में कितने ही नियमित संवाद-दाता नियुक्त करता। अहा, यदि मैं यह काम किसी तरह कर सकता तो स्वर्ग की ऐसी दशा न रहती। देवताओं को घूस दे-देकर जो प्राणी स्वर्ग में आते हैं उनका प्रति संख्या में संक्षेप से मानुषिक जीवन-वृत्तान्त निकाल सकता तो हमारे स्वर्गीय महात्माओं के बीच हलचल मच जाती।

(इन्द्र के पास जाकर) देवराज, सुनिए। आपके साथ मैं कुछ गुप्त —(अप्सराओं को देखकर) ओह ! मुझे मालूम न था कि ये सब यहाँ हैं—क्षमा कीजिए, मैं जाता हूँ। यह क्या ? देखता हूँ, इन्द्राणी जी भी बैठी हैं ! और ये सफ़ेद दाढ़ीवाले बूढ़े-बूढ़े राजर्षि, देवर्षि भी यहाँ बैठे क्या देख रहे हैं ? देखिए इन्द्रदेव, स्वर्ग में स्वायत्त-शासन-प्रणाली की प्रथा प्रचलित नहीं है, इसी से यहाँ का काम ठीक-ठीक नहीं चलता। यदि आप कुछ देर के लिए यह सब नाचना-गाना-बजाना बन्द करके मेरे साथ आवें तो मैं आपको बख़ूबी दिखा सकता हूँ कि यहाँ का कोई काम नियमित रूप से नहीं होता—किसी कार्य का न कोई नियम है न कुछ व्यवस्था। किसकी इच्छा से कब क्या होता है, यह भी कोई नहीं

जानता। क्या करने से क्या होगा, यह भी किसी को मुँह से निकालने का अवसर नहीं। काम ऐसी सफ़ाई से होना चाहिए, जो मैशीन की तरह तो चले और नज़र से देखते ही समझ में आ जाय। मैं सब नियमों को क्रम से लिख लाया हूँ—आपके सहस्र नेत्रों में से यदि एक जोड़ा नेत्र भी इधर फिरें तो—अच्छा, अभी यह बात यहीं तक रहे, आपका गाना-बजाना हो ले तब फिर देखा जायगा।

(भरत ऋषि की ओर देखकर) अच्छा, मुखिया महाशय, सुना है गाने-बजाने में आप बड़े उस्ताद हैं। आपसे कुछ पूछना है। गाने के सम्बन्ध में जो कई प्रधान अङ्ग हैं अर्थात् सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छनाएँ—क्या कहा? आप यह कुछ नहीं मानते—आप केवल आनन्द मात्र जानते हैं। इसी से तो देखता हूँ—और जितना देखता हूँ उतना ही चकित होता हूँ! (कुछ देर तक सुनकर) भरत महाशय, यह जो भद्र महिला है—इसका नाम क्या है? रम्भा, और उपाधि? क्या आप उपाधि नहीं समझते! जैसे रम्भा मिश्र, या रम्भा भट्ट—यदि क्षत्रिय हो तो रम्भासिंह, वैश्य हो तो रम्भा गुप्त—शायद यहाँ आप लोगों में इस तरह नाम के साथ उपाधि की प्रथा नहीं है! अच्छी बात है—सुनिए, श्रीमती रम्भा ने जो गीत गाया है उसकी तो आपने ख़ूब प्रशंसा की है किन्तु उसने किस रागिनी में गाया है, क्या यह आप मुझे कृपा करके बता सकते हैं? एक बार देखता हूँ,

धैवत लगता है फिर देखता हूँ कोमल धैवत भी लगता है—(फिर उनकी ओर देखकर) ओह! समझ गया, आप लोगों को सिर्फ़ प्रिय लगता है, किन्तु प्रिय लगने का कोई नियम नहीं है। हम लोगों में इसका उलटा है, प्रिय लगे चाहे न लगे किन्तु नियम होना ही चाहिए। आपके स्वर्ग में जो आवश्यक है, वह नहीं है; जो न होने से भी काम चल सकता है, उसकी बड़ी अधिकता है। सातों स्वर्गों को छान डालने पर यदि आधा नियम मिलेगा तो उसी क्षण उसके विरुद्ध हज़ार अनियम निकल पड़ेंगे। सभी बातों में ऐसा ही देखता हूँ। देखिए न, षडानन बैठे हैं। इनके छः मस्तकों में से पाँच की कोई आवश्यकता ही नहीं दिखाई देती। शरीर-तत्त्व की वर्णमाला भी जो जानता है, वह भी कह सकता है कि एक गर्दन पर छः मस्तकों का होना नितान्त असङ्गत है। (ख़ूब ज़ोर से ठहाका मारकर) क्या इनको छः माताओं का स्तन-पान करने के लिए छः मुण्ड धारण करने पड़े थे? यह तो हुई माइथालॉजी, मैं फ़िज़ियालॉजी की बात कह रहा था। छः सिर धारण किये इतना ही न, पाकयन्त्र तो एक से अधिक नहीं है। यही देख लीजिए, अपने स्वर्ग का इन्तज़ाम। आप लोगों ने शरीर से छाया को ख़ारिज कर दिया है। आपके साथ छाया नहीं रहने पाती, किन्तु उसने आपका क्या अपराध किया है? आप स्वर्ग के रहनेवाले हैं। शायद आप विश्वास नहीं करेंगे, मैं जन्मकाल से मृत्युकाल तक इस छाया

को कभी पीछे, कभी सामने, कभी दहनी ओर और कभी बाईं ओर देखता आया हूँ। उसको साथ रखने में एक दिन के लिए भी अद्धी पाई ख़र्च नहीं करनी पड़ी। अत्यन्त परि-श्रान्त होने के समय भी छाया ढोने में मुझे रत्ती भर भी भार नहीं जान पड़ा। इसको तो आपने छोड़ दिया, किन्तु छः मुण्ड, चार हाथ और हज़ार नेत्र धारण करने में ख़र्च भी है और भार भी। इसके सम्बन्ध में आपने कुछ सोच-विचार ही नहीं किया। जहाँ तक जो पाया, धारण कर लिया। छाया के साथ कदर्यता, किन्तु शरीर के लिए मुक्त हस्त! साधुवाद दे रहे हैं? तब तो देवताओं में आपही ने मेरी बात समझी है। साधुवाद मुझको दे रहे हैं या श्रीमती रम्भा को? ओफ़! तो आप बैठिए, मैं कार्त्तिकेय के पास जाता हूँ।

(कार्त्तिकेय के पास बैठकर) सेनापति, आप अच्छे तो हैं? आपके यहाँ मिलिटरी डिपार्टमेन्ट के सम्बन्ध में मुझे दो एक बातों का पता लगाना है। आप किस नियम से—अच्छा तो अभी रहने दो, पहले आपका अभिनय हो जाय। सिर्फ़ एक बात पूछता हूँ। जो नाटक खेला जा रहा है, इसका नाम तो मैंने सुना है—"चित्रलेखा का विरह।" अब यह समझाना होगा कि इसका उद्देश्य क्या है। उद्देश्य दो प्रकार के हो सकते हैं; एक ज्ञान-शिक्षा और द्वितीय नीति-शिक्षा। ग्रन्थकर्त्ता ने न तो इस ग्रन्थ में कोई जागतिक नियम हम लोगों को समझाया है और न यही स्पष्टतया

दिखलाया है कि भलाई करने से भलाई और बुराई करने से बुराई होती है। विचारकर देखिए, विवर्तनवाद के नियमानुसार परमाणुपुञ्ज किस तरह क्रम-क्रम से विचित्र संसार में परिणत हुआ; अथवा हमारी इच्छा-शक्ति जिस अंश से पूर्ववर्ती कर्म्म का फल है उसी अंश से बद्ध है और जिस अंश से परवर्ती कर्म को उपजाती है उस अंश से मुक्त है। इस चिरस्थायी विरोध का सामञ्जस्य कहाँ है—काव्य में जब स्पष्ट रूप से यह तत्त्व वर्णित होता है तब काव्य का उद्देश्य हाथो हाथ पाया जाता है। चित्रलेखा के विरह में इसका कौन तत्त्व वर्णित है? आप लोग तो अभिनय के आनन्द में मग्न हैं। आप लोगों की जो दशा देखता हूँ उससे तो यही जान पड़ता है कि देवलोक में यदि फ़िज़ियालॉजी का कोई नियम होता तो अभी आपके द्वादश नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती। जो हो, यह बड़े दुःख का विषय है। स्वर्ग में आप लोगों के यहाँ ढेरों काव्य नाटक पड़े हैं किन्तु जिसमें गवेषणा भरी कोई बात या चिन्ता-शीलता का परिचय पाया जाय ऐसा एक भी नाटक या काव्य स्वर्गीय ग्रन्थकारों के हाथ से नहीं निकलता। (कुछ मुस्कुराकर) देखता हूँ "चित्रलेखा का विरह" नाटक आपको बहुत ही पसन्द आया है, अच्छा आप यही देखिए।

(इन्द्र के पास जाकर) देवेश, स्वर्ग में आलोचना करने का स्थान न रहने से बड़ा ही अभाव जान पड़ता है। ऐसे

दिव्य लोक में एक भी क्लब नहीं, विचाराचार-सम्बन्धी कोई संस्था नहीं। मेरी इच्छा है कि नन्दन कानन के कल्पद्रुम के कुञ्ज में, जहाँ आपकी नृत्यशाला है वहाँ, एक सभा स्थापन करूँ और उसका नाम रक्खूँ शतक्रतु-डिबेटिंग क्लब। उससे आपका नाम भी होगा और स्वर्ग के अनेक उपकार भी होंगे। नहीं साहब, रहने दीजिए, माफ़ कीजिए—मुझे अभ्यास नहीं, मैं अमृत नहीं छूकता—यदि आप क्रोध न करें तो कहूँ, आप लोगों को यह अभ्यास छोड़ देना चाहिए—देखता हूँ, देवताओं में 'पान-दोष' कुछ बढ़ गया है। अवश्य ही आप उसे सुरा नहीं कहेंगे, किन्तु यदि कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। मर्त्यलोक में भी देखता था कि कितने ही लोग मदिरा को 'वाइन' कहकर कुछ संतोष करते थे। सुराधिप, आप श्रीमती मेनका को "मेनका" कहकर पुकारते हैं, यह सुनने में अच्छा नहीं मालूम होता। संस्कृत के काव्य-नाटकों में इस तरह का सम्बोधन प्रचलित है सही, किन्तु यदि आप इसका सच्चा पता लगा सकें तो जानेंगे कि अब ऐसा सम्बोधन निन्दनीय समझा जाता है। आप जानना चाहते हैं कि हम लोग क्या कहकर पुकारते हैं? हम लोग कभी माँ कहकर, कभी बेटी कहकर और कभी बहन कहकर भी पुकारते हैं। समय आ पड़ने पर भलेमानस की स्त्री को आर्यरमणी कहकर भी सम्बोधन किया जा सकता है। क्या आप इनमें से एक भी विशेषण का प्रयोग इन महिलाओं के प्रति नहीं करना

चाहते ? न करें तो न सही परन्तु यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आप इनके सम्बन्ध में जो विशेषण लगाकर बोलते हैं उससे सुरुचि का परिचय नहीं मिलता। क्या कहा ? स्वर्ग में सुरुचि भी नहीं और कुरुचि भी नहीं ! प्रथम जो नहीं है, इस विषय में मुझे कुछ सन्देह नहीं; परन्तु द्वितीय है, ख़ूब है, यह अभी साबित कर सकता हूँ; किन्तु आप तो मेरी किसी आलोचना पर कान ही नहीं देते।

(इन्द्राणी के पास जाकर) क्या आप नहीं समझतीं ? स्वर्गलोक में जो दोष घुस गये हैं उन्हें दूर करने के लिए हम लोगों को कटिबद्ध होना उचित है। आप देवाङ्गनाएँ यदि इन विषयों में शैथिल्य प्रकट करेंगी तो आपके स्वामियों के चरित्र की अवस्था क्रमशः शोचनीय होती जायगी। उनके सम्बन्ध में जो अपयश की बात प्रचलित है, वह आपसे छिपी नहीं है। बीच-बीच में यदि सभा हो और इन विषयों की आलोचना हुआ करे—आप लोग यदि सहायता करें तो—कहाँ जा रही हैं ? मालूम होता है, घर का कोई काम है ? (इन्द्राणी को उठते देखकर सब देवता उठ खड़े हुए और असमय में ही सभा भङ्ग हुई।) बड़ी मुश्किल हुई—किसी से कुछ कहने पर न कोई सुनता ही है और न समझता ही है। (इन्द्र के पास जाकर अधीर स्वर में) भगवन् सहस्र-लोचन, मेरे साढ़े पाँच करोड़ साढ़े पन्द्रह लाख वर्ष में अब कितने दिन बाक़ी हैं ?

इन्द्र—(उदासी भरे स्वर में) पाँच करोड़ पैंसठ लाख उनचास हज़ार नव सौ निन्नानवे वर्ष।

(गोकुलनाथ और तेंतीस कोटि देवताओं का एक साथ ठण्डी साँस लेना।)

स्वर्गीय प्रहसन

इन्द्र-सभा

बृहस्पति—हे सुरेश, तेंतीस करोड़ देवताओं से भी क्या इन्द्रलोक पूर्ण नहीं हुआ ? क्या और भी नये देवता बुलाने की आवश्यकता है ? आप स्मरण रक्खें, जन्म-मृत्यु के द्वारा मर्त्यलोक में मनुष्य-संख्या घटती-बढ़ती है, किन्तु स्वर्गलोक में मृत्यु के अभाव से देव-संख्या घटाने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए संख्या बढ़ाने के पूर्व विचार कर लेने की बड़ी आवश्यकता है।

इन्द्र—हे देवगुरु, स्वर्ग का मार्ग दुर्गम करने के लिए स्वर्गाधीश के प्रयत्न में तनिक भी त्रुटि नहीं, यह बात सब लोग जानते हैं।

बृहस्पति—पाकशासन, तो क्यों इस समय देवलोक में मनसा, शीतला, घाँटू नामधारी अज्ञात-कुल-शील नये-नये देवताओं का अभिषेक हो रहा है ?

इन्द्र—देवाचार्य, हम देवता लोग तीनों लोकों का जो कर्तृत्वभार लिये हुए हैं सो केवल तीनों लोकों की ही सम्मति

के आधार पर आपसे यह बात छिपी नहीं है कि मर्त्यलोक में देवताओं का निर्वाचन हुआ करता है। एक समय था जब आर्यावर्त के समस्त ब्राह्मण होताओं ने स्वर्ग का प्रधान पद मुझी को दे रक्खा था। उस समय सरस्वती और दृषद्वती के किनारों पर प्रत्येक यज्ञाग्नि में मेरे उद्देश से नित्य हवन किया जाता था। उस होम के धुएँ से मेरे सहस्र नेत्रों से निरन्तर आँसू बहा करते थे। अब नर-लोक में हवि-घृत केवल जठराग्नि के यज्ञ में क्षुधा दानवी के उद्देश से ही अर्पित होता है। सुनते हैं, वह घृत भी विशुद्ध नहीं।

बृहस्पति—वृत्रसूदन, सुना गया है कि उस अपवित्र घृत को पान करने से वह क्षुधा दानवी मृत-प्राय हो रही है। देवताओं पर देवराज की विशेष कृपा है, इसी लिए मर्त्यलोक में होमाग्नि बुझ गई है, नहीं तो नये (नक़ली) घृत के पचाने ही में देवताओं के पेट का समस्त अमृत रस तीव्र अम्ल रस में परिणत हो जाता। अग्निदेव को मन्दाग्नि हो जाता और वायुदेव को वायु-परिवर्तन की आवश्यकता होती, तथा समस्त देवताओं के अमर हृदय में असह्य शूल अमर होकर निवास करता।

इन्द्र—गुरुदेव, उक्त घृत के गुण-दोष मुझसे छिपे नहीं हैं। क्योंकि यमराज से उसका विवरण बराबर सुना करता हूँ। इसलिए मर्त्यलोक के हव्य पदार्थों पर मेरा कुछ भी लोभ नहीं है और होमाग्नि के बुझ जाने पर भी मैं कुछ खेद नहीं करता। मेरा कहना यही है कि जैसे फूल से सुगन्ध निकलती

है वैसे ही मर्त्यलोक की भक्ति से स्वर्ग ऊर्ध्व लोक में उद्घाहित रहता है। यदि वह भक्ति रूपी फूल सूख जाय तो हे द्विजोत्तम, तेंतीस कोटि देवता भी मेरे इस कल्पतरु-मोदित, नन्दन वन-शोभित स्वर्गलोक की रक्षा नहीं कर सकेंगे। इसी कारण से, मनुष्यों के साथ सहानुभूति रखने के लिए, बीच-बीच में मर्त्य-लोक के नव-निर्वाचित देवताओं को स्वर्ग में सादर बुला लाना पड़ता है। हे त्रिकालज्ञ, स्वर्ग के इतिहास में ऐसी घटना पहले भी तो हुई है।

बृहस्पति—मेघवाहन, यह सब इतिहास मेरा जाना-समझा है। किन्तु इसके पूर्व मर्त्यलोक से जो नये देवता स्वर्ग में आये थे वे सब सम्भ्रान्त देवताओं के साथ एक आसन पर बैठने योग्य थे। सम्प्रति घाँटू आदि जो देवता आपके निम-न्त्रण से स्वर्ग-लोक में आ पहुँचे हैं उन्होंने अपनी मलिन कान्ति से देव-सभा की दिव्य ज्योति को मलिन कर दिया है। मेरा यह प्रस्ताव है कि उनके लिए एक उपदेव-लोक बनाने के निमित्त विश्वकर्मा से भली भाँति समझाकर कहा जाय।

इन्द्र—विज्ञवर, ऐसा होने से वह उपस्वर्ग ही स्वर्ग बन जायगा और यह स्वर्ग उपस्वर्ग मात्र हो रहेगा। एक मात्र वेदमन्त्र के ऊपर हमारा स्वर्ग प्रतिष्ठित है। जर्मन पण्डितों के बहुत चेष्टा करने पर भी वह मन्त्र और उसका अर्थ धीरे-धीरे लुप्त हुआ जा रहा है। किन्तु हमारे नये आमन्त्रित देव-देवियों ने सायनाचार्य के भाष्य पर या ऐतिहासिकों के पुरातत्त्व पर

अथवा उनके प्राच्य शिष्यों की वैज्ञानिक व्याख्या के ऊपर ही अपने को निर्भर नहीं कर रक्खा है; वे रोज़-रोज़ नई-नई पूजा पाकर उपवास-परायण पुराने देवताओं की अपेक्षा कई गुने प्रबल हो उठे हैं। उनको अपने पक्ष में पाकर हम नया बल प्राप्त कर सकेंगे। इसलिए गुरुदेव, आप प्रसन्न मन से उनके कण्ठ में देवमाल्य अर्पण कर उन्हें अपना लीजिए।

बृहस्पति—"अहह गहनो मोहमहिमा" मर्त्यलोक का प्रसाद पाने की लालसा से कितने पुराने देवकुल के प्रदीप अपनी देवमर्यादा को क्रमशः छोड़ते जा रहे हैं! देव-सेनापति कार्त्तिकेय ने वीरवेष त्याग करके महीन कपड़े पहने और सिर में केशरञ्जन तेल डालकर हाथ में फूल-छड़ी ले निर्लज्ज नागर-मूर्त्ति धारण की है। गम्भीर स्वभाववाले गणपति कदली के साथ गुप्त परिणय-पाश में बद्ध हुए हैं और महायोगी महेश्वर ने गाँजा, भङ्ग, धतूर आदि विषपान से उन्मत्त हो महादेवी के साथ अश्राव्य भाषा में कलह करके नीच जातीय स्त्रियों की मण्डली मे अपना विहार-क्षेत्र बनाया है! जब यह सब एक-एक कर मैंने सहन कर ही लिया है तब मालूम होता है कि देवताओं के आसन पर उपदेवताओं के बैठने का दृश्य भी इस वृद्ध ब्राह्मण के कठिन हृदय को विदीर्ण नहीं कर सकेगा।

(चन्द्रमा का प्रवेश)

इन्द्र—नक्षत्रेश! स्वर्गलोक में तो कृष्ण पक्ष का प्रभाव नहीं है, तब आज क्यों तुम्हारी सौम्य सुन्दर मुख-छवि मलिन देखता हूँ?

चन्द्र—स्वर्ग में कृष्ण पक्ष होता तो मैं अमावस के अन्धकार में आनन्द से आश्रय ग्रहण कर सकता। आप शीतला देवी की अनुराग-दृष्टि से मुझे बचाइए। उसने जब से स्वर्ग में पैर रक्खा है तब से मुझ पर वह विशेष कृपा दिखा रही है, परन्तु उसके योग्य मैं अकेला कदापि नहीं। उसका वह प्रचुर अनुग्रह सर्व साधारण देवताओं में बँट जाय तो किसी के साथ अन्याय न होगा।

इन्द्र—सुनो सुधांशुमाली, सुहृद्गणों के साथ मिलकर भोग करने से विशेष आनन्द होता है इसमें सन्देह नहीं; किन्तु रमणी का वह अनुग्रह जातीय नहीं।

चन्द्र—भगवन्, तो वह आनन्द आप ही को मुबारक हो। आप देवताओं के राजा हैं। आपको छोड़ और कोई अकेला इस सुख के आवेग को नहीं सँभाल सकेगा।

इन्द्र—प्रिय सखे, दूसरे के पास जो वस्तु मिल सकती है वह मित्र को दे डालना कठिन नहीं है; किन्तु प्रेम वैसी वस्तु नहीं है। तुमने जो पाया है उसे तुम अपमानित कर फेंक सकते हो, किन्तु अपनी प्रियतमा की अत्यावश्यक पूर्ति के लिहाज़ से वह दूसरे को नहीं दे सकते।

चन्द्र—यदि मैं फेंक सकता तो दीन भाव से आपके दरवाज़े पर न आता। यह बड़ा ही सौभाग्य है कि दूर फेंक देने पर भी वह पैरों में ही लिपटी रहे।

इन्द्र—तो क्या तुम अपयश से डरते हो?

चन्द्र—मैं सच कहता हूँ, मुझे कलङ्क का डर नहीं।

इन्द्र—तो क्या तुम अपनी अन्तःपुरवासिनी प्रियतमा की ईर्ष्या से डरते हो?

चन्द्र—आप जानते ही हैं कि मेरे अन्तःपुर में सत्ताईस तारकाएँ हैं। वे सभी सारी रात जागकर अनिमेष दृष्टि से मेरी गति-विधि देखती रहती हैं, तथापि मेरे महल में अब तक अशान्ति का कारण सङ्घटित नहीं हुआ। सत्ताईस के बदले अट्ठाईस ही सही, इससे मैं नहीं डरता।

इन्द्र—तुम्हारे साहस को धन्य है। तब तुम्हें डर कैसा?

(घबराते हुए देवदूत का प्रवेश)

दूत—जय हो! देवराज, सरस्वती स्वर्ग छोड़ने का विचार कर रही हैं।

इन्द्र—(घबराहट के साथ) क्यों? देवताओं ने उनका क्या अपराध किया है?

दूत—मनसा, शीतला और मङ्गलचण्डी नाम की देवियाँ सरस्वती के कमलवन-शोभित सरोवर में गैंचा मछली खोजने गई थीं। कृतकार्य न होने पर उन्होंने कमल की कलियों से आँचल भर लिया। कलियों में इमली डाली और कड़ुवे तेल में उन्हें भूनकर किनारे बैठ करके ख़ूब खाया। फिर सरोवर में पीतल की थाली माँज-धोकर अपने-अपने घर को लौट गई हैं। अब तक मानसरोवर की कमल-कलियों को देवता या

दानव कोई भी खाने के लिए न तोड़ता था। (देवता परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।)

(घाँटू, मनसा आदि देव-देवियों का प्रवेश।)

इन्द्र—(आसन से उठकर) देवताओ, देवियो! स्वागत। आप कुशल से तो हैं? स्वर्गलोक में आपको किसी तरह का कष्ट तो नहीं है? भृत्यवर्ग सावधान होकर आप लोगों की आज्ञा का पालन करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं न? सिद्ध और गन्धर्व नृत्यशाला में नाच-गाकर आपका जी बहलाते हैं न? कामधेनु का दूध और अमृत समय पर आपके आगे रक्खा जाता है न? नन्दन कानन का सुगन्धित वायु, आपकी इच्छा के अनुसार, आपके झरोखों में होकर प्रवाहित होता है न? आपके पुष्पोद्यान में लता से वेष्टित कल्पद्रुम के फूल बराबर खिलते हैं न?

(देवियों का ख़ूब ज़ोर से हँसना।)

मनसा—(घाँटू की ओर देखकर) मर्दवा क्या बक रहा है?

घाँटू—पुरोहित बाभन की तरह मन्तर पढ़ता है। (इन्द्र की ओर देखकर) ए बाबू, तुम यहाँ के मालिक मालूम होते हो। तुम्हारा मन्तर पढ़ना हो गया हो तो मैं तुमसे कुछ बात करूँ।

इन्द्र—हे घाँटो, आपको जो—

घाँटू—घाँटो क्या? क्या मैं तुम्हारे बाबा का नौकर हूँ? अरे दादा! ऐसा ओछा आदमी कभी नहीं देखा। घाँटो! अगर मैं तुमको इन्दर न कहकर इन्द्रा कहूँ तो?

मनसा–तभी तो ठीक होगा ! (देवियों का उच्च हास्य)

इन्द्र—(उनकी हँसी में योग देने की चेष्टा करके) अये कुन्ददन्ति देवि ! मैंने बहुत तपस्या करके स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया था, किन्तु मैं अभी तक नहीं जान सका हूँ कि किस पुण्य के फल से आज आपके अपूर्व विकसित-दशन-मयूख से सहसा स्वर्गलोक अतिशय आलोकित हो उठा है ।

घाँटू—अरे रहने भी दो। फ़िजूल बातें क्यों बकते हो ! तुम्हारे मज़कूरी मुझे सोने के बर्तन में न जाने क्या ला देते हैं उसे मैं हाथ से भी नहीं छूता। तुम अपनी घरनी शची से कह दो कि मेरे लिए रोज़ थाल भर गोबर के लड्डू बनाकर भेज दिया करे ।

इन्द्र—तथास्तु। स्वर्ग में हमारी कामधेनु है। वह सबका मनोरथ पूरा करती है। आपकी प्रार्थना पूर्ण करना भी उसके लिए कुछ दु:साध्य नहीं है ।

शीतला—(चन्द्रमा को एक कोने में छिपा हुआ देख पास जाकर) अरी मैया ! तुम इतना कपट भी जानते हो। तुमने मुझे ख़ूब छकाया है। ख़ैर, मैंने समझा, तुम अन्दर महल में हो। झाँककर देखा तो अश्लेषा और मघा, नवाब की बेटी की तरह, बैठी हैं—मुझे देखकर चकित हो रहीं। उनकी इस चेष्टा को मैं बर्दास्त नहीं कर सकी। मैंने कहा, तुम बड़े आदमी की लौंडी हो, तुम्हें परिश्रम करके खाना नहीं पड़ता इसलिए मारे घमण्ड के नीचे पैर नहीं रखतीं ! देखूँगी तुम्हारा यह दिमाग़ कैसे रहता है !

चन्द्र—(सभा के बीच इन्द्र के प्रति) सत्ताईस के ऊपर अट्ठाईस हो जाने से कैसा दुर्योग उपस्थित हो सकता है, यह आप सहज ही अनुभव कर सकते हैं। (शीतला की ओर देखकर) अयि अनवद्ये,—

शीतला—(हँसते-हँसते अस्थिर होकर) मैया री मैया! तुम इतना हँसा भी सकते हो! आदर करके अच्छा नाम रक्खा है। अन बैद! किन्तु बैद का क्या करोगे! कितने ही बैदों के सात पुरुषों को मैं सात घाट का पानी पिला आई हूँ। मैं ऐसी-वैसी औरत नहीं हूँ।

घाँटू—(इन्द्र के पास जाकर और उनकी पीठ पर हाथ रखकर) क्यों भाई इन्दर! तुम्हारा चेहरा उदास देखता हूँ। मुँह से एक अक्षर भी नहीं निकलता। रात को घर-वाली से झगड़ा या गाली-गलौज तो नहीं हो गई?

इन्द्र—(सङ्कोच से हटकर और दूरस्थित आसन दिखा-कर) वह आसन है, उस पर उपवेशन करने की कृपा कीजिए।

घाँटू—यहीं तो बहुत जगह है। (इन्द्र के साथ एक आसन पर बैठकर) भाई, मेरे साथ तुम सङ्कोच मत करो। आज से तुम हुए मेरे भैया और मैं हुआ तुम्हारा छोटा भाई घाँटू। (इन्द्र को आलिङ्गन कर गले लगाना और इन्द्र के मुँह से कातरता-व्यञ्जक अस्पष्ट शब्द का उच्चारण।)

शीतला—(चन्द्रमा की ओर लक्ष्य करके) तुम कहाँ जाते हो?

चन्द्र—सुन्दरी ! आज महल में देवियों ने भर्तृप्रसादन व्रत के उपलक्ष्य में अपने इस सेवकाधम का स्मरण किया है। इसलिए, यदि आज्ञा हो तो, हे मृगशालीन-नयने—

शीतला—क्या कहा, साली ? अच्छा तो यही सही ! तुम्हारे अमृत-भरे मुँह से सभी मीठा मालूम होता है। यदि मुझसे साली का नाता लगाया है तो कनेठों का मज़ा भी चख लो ! (चन्द्रमा के साथ एक ही आसन पर बैठकर चन्द्रमा के कान मलना।)

इन्द्र—(चन्द्रमा के प्रति) सुधाकर, तुम धन्य हो। सरल कोमल स्पर्श से तरुणी के कर-कमल की अरुणिमा अभी तक तुम्हारे कर्णमूल में शोभा दे रही है !

शीतला—(मनसा को लक्ष्य करके आप ही आप) जलो ! ख़ूब जलो ! मेरे मर्दवा की डाह से जल मरो। मेरा सुख देखकर छाती फटती है। मैं चाँद के पास बैठी हूँ। उससे यह नहीं देखा जाता। देखो न, चारों ओर चक्कर लगा रही है। इतने मर्दों के बीच सीना तानकर चलती है, तनिक लाज भी नहीं लगती ! औरतिया इस दफ़े गाँव में जाकर कितनी ही कानाफूसी करेगी। इसने क्या कम किया है ! कार्त्तिक बाबू के साथ जैसा निर्लज्जपन किया है उसे देखकर मैं लज्जा के मारे मरी जाती हूँ। कार्त्तिक वेचारे को छिपने के लिए जगह नहीं मिलती ! वही तो चेहरा है, ख़ूब आँखें और भौंहें मटका रही है ! अरी माई री माई ! (प्रकाश्य)

तू मर क्यों नहीं जाती ! चन्द्रदेव के सामने इस प्रकार बेहया होकर तू क्यों चक्कर लगा रही है ! नागिन की भाँति नाचती-फिरती है। यह नाच कार्त्तिक को जाकर क्यों नहीं दिखाती ? क्या वहाँ बैठने को जगह नहीं मिलती !

(देवसभा में मनसा और शीतला का ग्राम्य भाषा में घोर कलह।)

इन्द्र—(घबराकर एक बार मनसा और एक बार शीतला की ओर देखकर) क्रोध निवारण करो, शान्त हो, अयि असूयाकृत-ताम्रलोचने, अयि गलद्वेणीबन्धे, अयि विगलित-दुकूलवसने, अयि जितकोकिलकलकूजिते ! बहुत बढ़े हुए सप्तम स्वर को नम्र करके पञ्चम स्वर में ले आओ। अयि कोपने—

घाँटू—(दुपट्टा पकड़कर इन्द्र को सिंहासन पर बिठा-कर) भाई साहब, आप इतना घबराते क्यों हैं ? इन सबमें तो ऐसा रोज़ ही होता है। महामारी देवी रहती तो और भी रङ्ग जमता। उसके खाने-पीने की चीज़ों में कुछ गड़बड़ हुई है, इसी से वह शची के साथ झगड़ने गई है।

इन्द्र—(व्याकुल भाव से) अयि पुलोमनन्दिनि मदीय मानसविहारिणि—

(मनसा का शीघ्र गति से सभात्याग और शीतला का फिर चन्द्रमा के शरीर से सटकर बैठना।)

(सरस्वती का प्रवेश)

सरस्वती—देवराज, कठोर कोलाहल से मेरी वीणा का स्वर बिगड़ रहा है। मेरा कमल-वन ऊजड़ सा हो गया। मैं देवलोक से जाती हूँ। (प्रस्थान)

बृहस्पति—मैं भी सरस्वती देवी के साथ जाता हूँ। (प्रस्थान)

(अश्लेषा और मघा का सभा-प्रवेश)

अश्लेषा और मघा—(चन्द्रमा के साथ शीतला को बैठी देखकर) हम आज एक अपूर्व नई सत्रहवीं कला से आर्य कलाधर को बड़ा ही शोभायमान देखती हैं।

चन्द्र—देवियो, इस हतभाग्य को निर्दय परिहास से दुःखित न करो। पुरुष-राहु मुझे कभी-कभी दो-एक घड़ी के लिए ग्रस्त करके छोड़ देता है—इतने से ईश्वर को सन्तोष नहीं हुआ। अब ईर्ष्यान्वित होकर उसने मेरे लिए फिर एक स्त्री-राहु को सिरजा है। इसके पूर्णग्रास से, अनेक चेष्टा करके भी, मैं अपने को नहीं छुड़ा सकता।

अश्लेषा—आर्यपुत्र, यह कुलीन महिला—अभी थोड़ी देर पहले—आपके महल में जाकर आपके ससुर के चौदह पुरुषों का, अश्रुतपूर्व निन्दा द्वारा, उद्धार कर आई है। देवी के इस अद्भुत व्यवहार को अधिकार से बाहर का उपद्रव समझकर हम विस्मित हुई थीं। अब स्पष्ट हो गया कि इस सौभाग्यवती ने आप ही से वैसा अपमान करने का अधिकार पाया है।

अब आर्यपुत्र को नये श्वशुर-कुल में सौंपकर हम नक्षत्रलोक से पृथक् होने के लिए चलीं। (शीतला के प्रति) कल्याणी, तुम्हारा सौभाग्य अक्षय हो। (प्रस्थान)

(इन्द्राणी का प्रवेश)

इन्द्र—(सादर आसन त्यागकर) आइए, आइए, बैठिए।

घाँटू—(दुपट्टा पकड़कर इन्द्र को बरजोरी आसन पर बिठाकर) ओफ़ ! बड़ी ख़ातिरदारी हो रही है। अरे दादा ! बहुत मर्दों को देखा है, किन्तु तुम्हारे ऐसा स्त्री-भक्त आज तक नहीं देखा।

(घाँटू को इन्द्र के बाईं ओर—अर्द्धाङ्गिनी के बैठने की जगह—बैठते देखकर शची एक कोने में सामान्य आसन पर जा बैठी।)

घाँटू—(शची के पास जाकर हँसता हुआ) भौजी, मेरे भैया पर क्या जादू कर दिया है, बताओ। उसे बिलकुल अपना गुलाम बना रक्खा है। तुम्हारे उठते ही उठता है और बैठने के साथ बैठ जाता है। अच्छा, कुछ कहो भी तो (गान) "करने में बात दोष क्या है चन्द्रमुखी, हाँ !"

इन्द्र—देव घाँटो, मुझे कुछ समय देने की कृपा कीजिए। शची देवी से कुछ निवेदन करना है।

घाँटू—हाँ, हाँ, समझ गया। मैं तुम्हारे पास आकर बैठा हूँ सो यह तुम्हें अच्छा नहीं लगा। इसके लिए इतनी बात बनाने की ज़रूरत ? लोग ठीक कहते हैं कि "बहुत भक्ति चोर का लक्षण है।" मतलब क्या, बहुत बोलूँगा तो कहीं

शाप दे दोगे। तुम दोनों बैठो, मैं जाता हूँ। (बरजोरी इन्द्र को शची के आसन पर बिठाने की चेष्टा।)

इन्द्र—(घाँटू को दूर हटाकर) देव, तुम अपने को भूल रहे हो। (घाँटू का प्रस्थान)

(महामारी देवी का प्रवेश)

महामारी—(शची को लक्ष्य करके) इसी से कहती थी कि जायगी कहाँ! समझती हूँ, तुम स्वामी के पास चुग़ली करने आई हो! बहकाओ न। तुम्हारे स्वामी का मुझे डर नहीं है।

शची—(आसन से उठकर इन्द्र के प्रति) प्राणनाथ! मैंने जयन्त को साथ लेकर विष्णुलोक में कुछ दिन लक्ष्मी देवी के घर रहने का सङ्कल्प किया है। बहुत दिनों से मैंने लक्ष्मी देवी को नहीं देखा।

इन्द्र— प्रिये, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। चिरकाल से पूजा करने का अवसर न पाकर मैं विष्णुदेव के निकट अपराधी हूँ।

[दोनों का प्रस्थान।]

चन्द्र—सहस्राक्ष! विष्णुलोक में मुझे भी एक बहुत ज़रूरी काम है। लक्ष्मी देवी, हाय! तुम कब दर्शन दोगी? अपने भाई की सुधि न लोगी! हा!—"कुसमय मीत काको कौन?"

शीतला—तुम इस तरह मुँह क्यों फुलाये हुए हो! इस तरह करोगे तो फिर कनेठी दूँगी।

चन्द्र—कनकप्रभे, विष्णुलोक में मुझे अधिक विलम्ब न होगा। यदि आज्ञा हो तो दास—

शीतला—फिर कनेठी खाओगे ! (कान मलने को उद्यत होना ।)

(मनसा का फिर प्रवेश, शीतला के साथ फिर झगड़ा; घाँटू, महामारी, मङ्गलचण्डी आदि का उसमें योग देना ।)

चन्द्र—आप लोग तब तक आपस में मधुर आलाप करें, दास तो विष्णुलोक को जाना चाहता है ।

(जल्दी-जल्दी प्रस्थान)

वशीकरण

पहला अङ्क

आशुतोष और अन्नदा बाबू

आशु०—अच्छा अन्नदा बाबू, मान लो, तुम ब्राह्मो ही हुए तो इसके लिए तुमने स्त्री को क्यों छोड़ दिया ? स्त्री तो तेंतीस कोटि देवताओं में नहीं है । स्त्री को घर में रखना क्या प्रतिमापूजन का चिह्न है ?

अन्नदा०—नहीं जी, स्त्री को छोड़ने से क्या स्त्री-जाति से सम्बन्ध छूट सकता है ? स्त्री के त्याग से स्त्री-जाति विश्व-व्यापिनी होकर दिखाई देती है । स्त्री-पूजा की मात्रा मन ही मन बढ़ती जाती है ।

आशु०—तो फिर ?

अन्नदा०—सुनो, कहता हूँ । मेरे सास न थी, और श्वशुर थे कट्टर हिन्दू । इन्होंने जब सुना कि मैं ब्राह्मो हो

गया हूँ तब वे मेरी स्त्री को विधवा का भेस कराकर काशी-सेवन कराने ले गये। इसके बाद सुना कि जब हिन्दुओं के देवी-देवताओं से उनको तृप्ति नहीं हुई तब और महात्मा ढूँढ़े गये। आलकाट, ब्लैवेट्स्की, एनी बेसन्ट, सूक्ष्म शरीर, महात्मा, प्लैनचेट, भूत-प्रेत कोई भी छूटने नहीं पाया।

आशु०—केवल तुम छूट गये।

अन्नदा०—मुझे ब्रह्मराक्षस कहकर छोड़ दिया।

आशु०—तो तुमने उसकी आशा एकदम छोड़ दी है?

अन्नदा०—आशा का कोई दोष नहीं—उसके पीछे इतनी बड़ी रेजिमेन्ट लगी है कि वह ठहर नहीं सकी! सुना है, मेरे ससुर मर गये हैं और मेरी स्त्री अब पतितों का उद्धार करती फिरती है।

आशु०—तुम एक बार जाकर उसके पैरों पर गिरो तो (पतित होने के कारण) शायद तुम्हारा भी उद्धार कर दे।

अन्नदा०—मैं उसका पता ही नहीं जानता। जानने की ख़्वाहिश भी नहीं।

आशु०—तो तुम इसी तरह उड़ते फिरोगे?

अन्नदा०—नहीं जी, सोने के पिँजड़े की खोज में हूँ।

आशु०—पिँजड़ेवाले की कमी नहीं है। हाँ, सोने का मिलना अवश्य दुर्लभ है।

अन्नदा०—अच्छा, मेरी आलोचना फिर होगी। तुम अपना हाल तो बताओ। कुमार-व्रत का विधान तो तुम्हारे

किसी शास्त्र में नहीं है। अब चुप क्यों हो रहे! थियोसफ़ी ने तुमको खा डाला। जो तुम ब्याह कर लो तो मन्त्र, तन्त्र, प्राणायाम, हठयोग, सुषुम्ना-इड़ा-पिङ्गला, स्वरसिद्धि ये सभी तुमको छोड़ दें।

आशु०—तुम समझते हो कि मैं सभी बातों पर अन्धभाव से विश्वास कर लेता हूँ। पर ऐसा नहीं है। मैं परीक्षा करके देखना चाहता हूँ कि ये सब विश्वास योग्य हैं भी या नहीं। अविश्वास को भी तो प्रमाण के ऊपर स्थापन करना होगा।

अन्नदा०—बैठे-बैठे यही किया करो। जाँच करने ही में जीवन को बिता डालो। मरीचिका के स्थापन के लिए पत्थर की दीवार खड़ी करो। मैं अब जाता हूँ।

आशु०—कहाँ जाते हो?

अन्नदा०—शव-साधन के लिए नहीं।

आशु०—यह तो जानता हूँ।

अन्नदा०—एक सजीव का पता लगा है।

आशु०—तो जाओ, शुभ कार्य में बाधा नहीं दूँगा।

दूसरा अङ्क

मकान-मालिक और उसकी स्त्री

स्त्री—माईजी हैं तो फिर ऐसा चेहरा क्यों है?

मकानवाला—जो देखने-सुनने में ताड़का राक्षसी के सदृश न हो तो समझना होगा कि वह माईजी ही नहीं!

स्त्री—होगी क्यों नहीं ! किन्तु होने ही से क्या इस जवानी के आलम में, स्वामी के घर में न रहकर, तुम्हारे जैसे भोले-भाले को ठगने के लिए माईजी बनी घूमती फिरती ? अच्छा पिताजी ने तुम्हारी माईजी को छोड़ क्यों दिया ? और इसने इतना रुपया ही कहाँ पाया ?

मकानवाला—अरे, जो योगविद्या जानती है उसके पास रुपया न होगा, उसका चेहरा ख़ूबसूरत न होगा, तो क्या तुम्हारा होगा ! ठहरो, इससे कुछ मन्तर-जन्तर सीख लेता हूँ ।

स्त्री—बुढ़ापे में मन्तर-जन्तर सीखकर क्या करोगे ? किसको वश में करोगे ?

मकानवाला—जिसको किसी तरह वश में नहीं ला सका ।

स्त्री—वह कौन है ?

मकानवाला—पहले वश में कर लूँगा तब साहस करके नाम भी बता दूँगा ।

(माईजी का प्रवेश)

माईजी—इस मकान में मुझे सुभीता नहीं । मुझे तो इससे बड़ा मकान चाहिए ।

मकानवाला—इस मकान के अलावा मेरा एक और मकान है । वह बड़ा तो है किन्तु—

माईजी—उसका भाड़ा अधिक दूँगी । किन्तु मैं कल उसी मकान में जाना चाहती हूँ ।

मकानवाला—परसों वह मकान उठ गया है। शायद वह किसी सदरआला की विधवा स्त्री है। पश्चिम से लड़की के लिए वर खोजने आई है। मेरे उसी उनचास नम्बरवाले मकान में टिकी है।

माईजी—उनचास नम्बर! ठीक है। मैं उसी मकान में जाऊँगी। तुम्हारे इस मकान का नम्बर ठीक नहीं।

मकानवाला—माईजी, क्या बाईस नम्बर अच्छा नहीं है? कारण क्या है, समझाकर कहिए।

माईजी—समझते नहीं हो—दो की पीठ पर दो है।

मकानवाला—आपने ठीक कहा है, दो की पीठ पर दो तो अवश्य है! इतने दिन तक मैंने यह नहीं सोचा था।

माईजी—दो में कुछ शेष नहीं रहता, तीन चाहिए। देखो न हम सब बात करते समय बोलती हैं, दो-तीन आदमी—

मकानवाला—हाँ ठीक है, यह तो बोलते ही हैं।

माईजी—यदि दो कहने ही से काम चल जाता तो उसके साथ तीन कहने की क्या ज़रूरत थी? विचार कर देखो।

मकानवाला—मुझमें बुद्धि ही कितनी है जो समझूँगा। सभी तो जानता हूँ, फिर भी कुछ समझा नहीं।

माईजी—इसी से, दो की पीठ पर दो रहने ही के कारण मेरा कोई मन्त्र-तन्त्र सफल नहीं होता!

स्त्री—(आप ही आप) दो की पीठ पर दो मेरा सदा क़ायम रहे। तुम्हारे मन्त्र-तन्त्र के सफल होने का काम नहीं।

माईजी—उनचास की ऐसी शुभ संख्या और नहीं होती।

मकानवाला—(स्त्री को लक्ष्य करके) सुन लिया न ?

स्त्री—सुनने से क्या। तुम्हारे उनचासवें को तो पूरे हुए बहुत दिन बीत गये।

मकानवाला—तो माईजी उस मकान में कल ही जायँगी ?

माईजी—कल उनतीस तारीख़ को मङ्गलवार पड़ता है। ऐसा दिन फिर नहीं मिलेगा।

मकानवाला—ठीक है। कल उनतीस भी है और मङ्गलवार भी। कैसा अद्भुत योग है ! तब तो कल जाना ही ठीक है। अच्छा सब ठीक कर दूँगा। (माईजी का प्रस्थान) अब मैं उस नये किरायेदार को हटाऊँगा तो वह क्या कहेगा ? दूर देश से आई है, उस बेचारी को दूसरा मकान एकाएक मिलेगा ही कहाँ ?

स्त्री—इसी मकान में लाकर रक्खो न। न हो तो हम लोग तब तक कुछ दिन झामा-पोखर में जमना बाबू के घर जाकर रहें। इस जादूगरनी को यहाँ रखने का काम नहीं। इसे शीघ्र बिदा कर दो। बाल-बच्चे का घर है। कौन जाने, कब किससे क्या अपराध हो जाय !

मकानवाला—हाँ, ठीक कहती हो। उनको, किसी तरह समझा-बुझाकर, आज ही उनचास नम्बर के मकान से यहाँ ले आना चाहिए। कहूँगा, महल्ले में प्लेग शुरू हो गया है। इस मकान में प्लेग का अस्पताल रहेगा और यहीं रोगियों का इलाज होगा।

तीसरा अङ्क

आशुतोष और अन्नदा बाबू

अन्नदा०—तुम्हारे इस ताज़ा मिर्चे के धुवें ने मेरी आँख और नाक से पानी टपका दिया। अब तुम्हारे घर आना छोड़ना पड़ेगा।

आशु०—ताज़ा मिर्चे का धुवाँ तुम्हें कब कहाँ लगा?

अन्नदा०—यही तुम्हारे तर्कालङ्कार का बकवाद! उसने हाथ-पैर तो बहुत पटके परन्तु उसके कथन में क्या कुछ भी सिर-पैर मिला?

आशु०—बे-सिर-पैर के ही क्या वे फ़िज़ूल हाथ-पैर पटकते हैं? उनकी बातें श्रद्धापूर्वक सुनते तब न समझ में आतीं।

अन्नदा०—यदि समझता तो श्रद्धा करता। तुम फ़िज़िकल सायन्स में एम० ए० का इम्तिहान दे आये हो। तुम देहाती पण्डित का इतना हाथ-पैर पटकना, और सिर हिलाना बरदाश्त करते हो;—यह यदि प्रेसिडेन्सी कालेज की चूने से पोती हुई दीवारें देख पातीं तो वे, बिना ही रङ्ग पोते, मारे लज्जा के लाल हो उठतीं। अच्छा, आज उसके साथ क्या बात हुई, समझाकर कहो।

आशु०—पण्डितजी ने विवाह-तत्त्व की व्याख्या की थी।

अन्नदा०—इस तत्त्व को जान लेना मेरे लिए बड़ा ही आवश्यक हो गया है। तर्कालङ्कार ने कहा था कि विवाह के

पहले, कन्या के साथ जान-पहचान न करना ही अच्छा है। युक्ति क्या बताई थी, मैं अच्छी तरह नहीं समझा।

आशु०—उन्होंने कहा था, सब पदार्थों के आरम्भ में एक प्रकार की गुप्तता रहती है। बीज मिट्टी के नीचे, अन्धकार के भीतर, रहता है। इसके बाद अङ्कुरित होने पर वह सूर्य, चन्द्र और जल-वायु के सामने ऊपर सिर उठाता है। ब्याह के पहले कन्या के हृदय को विलायती ढङ्ग से बाहर खींचने की अपेक्षा उसे छिपा रखना ही उचित है। उस अवस्था में उसके ऊपर बार-बार दृष्टि डालना या उसकी गुप्त प्रकृति को प्रकट करना ठीक नहीं। जब वह स्वभावतः अङ्कुरित होकर अपनी अर्धमुकुलित सलज्ज दृष्टि को चुपचाप तुम्हारी ओर बढ़ावे तब तुम्हारा अवसर है।

अन्नदा०—मेरे भाग्य में तो यह परीक्षा हो गई है। मैंने विलायती प्रथा की भाँति, विवाह के पूर्व, कन्या के मनोरथ की खींचखाँच नहीं की; हृदय इतने अँधेरे में था कि मैं उसे खोज-कर भी कहीं नहीं पा सका। इसके बाद अङ्कुरित हुआ या नहीं, इसका कुछ पता आज तक नहीं लगा। इस दफ़े उलटे ढङ्ग से परीक्षा करने चला हूँ। इस दफ़े पहले हृदय, उसके बाद और कुछ।

आशु०—परीक्षा कब होगी ?

अन्नदा०—कल।

आशु०—कहाँ ?

अन्नदा०—उनचास नम्बरवाले मकान में, रामदास वैरागी की गली में।

आशु०—नम्बर तो सुनने में अच्छा नहीं मालूम होता।

अन्नदा०—क्यों? उनचास वायु की बात सोचते हो? वह मुझे नहीं हिला सकेगा—तुम होते तो विपत्ति में पड़ते।

आशु०—पात्री।

अन्नदा०—कन्या की विधवा माता उसे युक्तप्रदेश से साथ लाई है। मैंने घटक* से कह दिया है कि मैं पहले लड़की को अच्छी तरह देख-भाल लूँगा तब ब्याह की बात होगी।

आशु०—किन्तु अन्त में तुम बहुविवाह में प्रवृत्त हुए।

अन्नदा०—तुम्हारी भाँति मैं विवाह के नाम से ही डरकर नहीं भागता। जिस बहुविवाह में और तो सब कुछ है, केवल बहू (दुलहिन) नहीं है उसे देखकर तुम क्यों चौंकते हो?

आशु०—फिर भी एक प्रिन्सिपल तो है—बहुविवाह को बहुविवाह ही कहना होगा।

अन्नदा०—जहाँ मेरी नाममात्र की स्त्री है वहाँ प्रिन्सिपल भी है। वह स्त्री जब मेरे पास मौजूद नहीं, उसका पता तक मुझे मालूम नहीं, तब मेरे लिए यह अपवाद चरितार्थ नहीं हो हो सकता। इसलिए अब मैं डङ्का पीटकर बहुविवाह करूँगा, प्रिन्सिपल-रूपी जूजू से बिलकुल नहीं डरूँगा।

---

* बँगला भाषा में घटक उसे कहते हैं जो लड़के और लड़कीवाले के बीच आवश्यक बातें तय कराता है।

(श्यामाचरण का प्रवेश)

श्याम०—आशु बाबू।

आशु०—कहिए, क्या है ?

श्याम०—उस दिन आपने मेरे साथ मन्त्र के विषय में तर्क किया था। एक-एक शब्द में एक-एक प्रकार की विशेष शक्ति है, मुझे तो ऐसा ही जान पड़ा। आप इस पर पूरा विश्वास नहीं करते।

अन्नदा०—आशु बाबू की अविश्वास करने की क्षमता अब भी सम्पूर्ण रूप से लुप्त नहीं हुई है। अब भी दो-एक जगह सन्देह है। शब्द में शक्ति है, इसे आज-कल के नव-शिक्षित नहीं मानते।

श्याम०—कहिए अन्नदा बाबू, तो फिर मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण यह सब क्या गाँजे-अफ़ीम की नशाख़ोरी है ?

अन्नदा०—यह कभी हो सकता है ? संसार में इतने गाँजे और अफ़ीम की खेती कहाँ होती है ?

श्याम०—युक्तप्रदेश से एक सिद्ध गोसाँइन माई आई हैं। सुना है कि वह मन्त्र का बल बिलकुल प्रत्यक्ष दिखा दे सकती हैं। मैं देखने गया था, किन्तु वह सबको नहीं दिखातीं। कहती हैं, योग्य व्यक्ति मिले तो उसे अपनी सारी विद्या दिखा दूँगी। आशु बाबू, चेष्टा करने पर आप कभी विफल नहीं होंगे।

आशु०—वह कहाँ रहती हैं ?

श्याम०—बाईस नम्बर मेंढ़ाटोली में।

अन्नदा०—उनचास की अपेक्षा बाईस नम्बर अच्छा हो सकता है किन्तु जगह अच्छी नहीं मालूम होती। एक तो वशीकरण विद्या, उस पर फिर मेंढ़ाटोली। देखना, माईजी के पास अपना सिर न खो आना।*

आशु०—छि: क्या बकते हो! ऐसा कभी हो सकता है। वे साध्वी स्त्रियाँ हैं, वहाँ सिर की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। तुम समझ-बूझकर उनचास नम्बर के मकान में पैर रखना।

अन्नदा०—तुम सोचते हो कि बाईस बिलकुल ही निर्विष है! इस धोखे में न रहना। बीस (विष) के ऊपर और भी दो मात्रा चढ़ने पर बाईस होता है! पैर से सिर तक सविष होकर लौटोगे!

चौथा अङ्क

बाईस नम्बर के घर में कन्या की विधवा माँ रमासुन्दरी

रमा—प्लेग का नाम सुनकर भय से प्राण सूखा जा रहा है! झटपट वहाँ से भाग तो आई किन्तु आज उस उनचास नम्बरवाले मकान में अन्नदाप्रसाद नामक एक लड़का आनेवाला था। वहाँ से क्या वह यहाँ बेखटके आ सकेगा? इतना परिश्रम करके जो खाने-पीने की वस्तुओं का आयोजन

---

* देवी को मेंढ़े का बलिदान दिया जाता है और सिर काटकर उनके पास पूजा में रख दिया जाता है।

किया है वह क्या व्यर्थ जायगा ? मकानवाले ने इतनी जल्दी कर दी कि एक बार उस लड़के को ख़बर देने का भी समय न मिला। 'घटक' ने कहा है कि लड़का मेरी अनुपम-सुन्दरी को भली भाँति देख-भाल लेना चाहता है। इसके पढ़ने-लिखने, गाने-बजाने आदि सब बातों की जाँच करेगा। अच्छा है, करे। अनुपम को उसके पिता ने उसी तरह की शिक्षा दिलाई है। वे बराबर युक्त प्रदेश में रहा करते थे। हम सबको उन्होंने कभी परदे में नहीं रक्खा। फिर भी मालूम नहीं, कलकत्ते के नवयुवक कैसे होते हैं। डर है कि हम लोगों की चाल-ढाल देखकर वह कहीं हमको अभद्र न समझ बैठे। कौन जाने, वह स्त्री के साथ शेकहैन्ड करता है या राम राम; या अङ्गरेज़ी में गुडमॉर्निङ्ग कहे। सुना है, उन्हें अपने हाथ से चुरुट सुलगाकर देना होता है। यह तो मुझसे नहीं हो सकेगा। 'घटक' ने कहा है, लड़का हैट-कोट पहनता है। इधर मेरी लड़की अङ्गरेज़ी लिवास को आँख से देखना भी नहीं चाहती। कैसे, क्या होगा, समझ में नहीं आता। वह वेद-विधि से मन्त्र पढ़कर ब्याह कराने को राज़ी होगा या नहीं, यह भी मालूम नहीं।

(नौकर का प्रवेश)

नौकर—माताजी, एक बाबू आये हैं। मैंने उनसे कहा है कि घर में कोई पुरुष नहीं है। उन्होंने कहा कि माताजी से ही भेंट करनी है।

रमा०—ठीक है। वही लड़का आया है। बुला लाओ। (नौकर का प्रस्थान) डर लगता है—कलकत्ते का लड़का है, उसके साथ किस ढङ्ग से बातचीत करनी होगी, मुझे कुछ मालूम नहीं। कहीं वह मुझे जङ्गली जानवर न समझ ले!

(आशु बाबू का प्रवेश)

(रमासुन्दरी के पैरों के पास एक गिन्नी रखकर आशुतोष का भूमिष्ठ हो प्रणाम करना)

रमा०—(स्वगत) अरे! इसने तो भेंट देकर प्रणाम किया है। इसने शेकहैन्ड नहीं किया। ईश्वर ने मेरी लाज रख ली! बड़ा ही भला लड़का है! सुन्दर धोती और कोट पहनकर आया है।

आशु०—माईजी, आशा न थी कि आप मुझे दर्शन देंगी। आपने बड़ा अनुग्रह किया।

रमा०—(सस्नेह पुलकित होकर) क्यों बेटा, तुम तो मेरे लड़के के बराबर हो। तुमसे भेंट करने में दोष ही क्या है!

आशु०—मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझ पर आप सदा ऐसा ही स्नेह रक्खें और आशीर्वाद दें। इस अनुग्रह से मैं कभी वञ्चित न रहूँ।

रमा०—बेटा, तुम्हारी बातें सुनकर मेरे कान तृप्त हुए। मैंने अवश्य ही बड़ी तपस्या की थी, इसी से—

आशु०—माईजी, आपने तपस्या के द्वारा जो अनुपम धन पाया है मुझे उस—

रमा०—वह तुमको देने ही के लिए तो प्रस्तुत होकर आई हूँ। बहुत खोज करने पर योग्य पात्र पाया है। अब दे करके ही निश्चिन्त हूँगी।

आशु०—(रमासुन्दरी की चरण-रज लेकर) माईजी, आपने मुझको कृतार्थ किया। इतनी सुगमता से ही फल पा जाऊँगा, यह मुझे स्वप्न में भी मालूम न था।

रमा०—वत्स, यह तुम क्या कहते हो। तुम्हारा जितना आग्रह है, मेरा आग्रह उससे भी बढ़कर है।

आशु०—तो मैं जो कामना करके आया था, उसका क्या आज कुछ परिचय—

रमा०—परिचय होगा क्यों नहीं। मेरी ओर से उसमें कोई बाधा नहीं—

आशु०—बाधा नहीं, यह सुनकर जी को बड़ा चैन मिला।

रमा०—देखा-सुनी सब होगी। पहले कुछ भोजन तो कर लो।

आशु०—भोजन भी करना होगा! आप तो यथार्थ माता ही की भाँति स्नेह दिखला रही हैं।

रमा०—तुम भी मुझे अपनी माता ही की भाँति देखो, यही मेरे हृदय की बड़ी लालसा है। मेरे पुत्र नहीं है, तुम्हीं मेरे बेटा होकर रहना।

(थाली में भोजन की सामग्री लेकर नौकर का प्रवेश।)

आशु०—इतना आयोजन किसलिए?

रमा०—आयोजन तो कुछ नहीं किया। आज आओगे या नहीं, मन में कुछ सन्देह था। इसी से—

आशु०—सन्देह था! क्या आप जानती थीं कि मैं आऊँगा?

रमा०—हाँ, जानती थी।

आशु०—(मन में) बड़ा आश्चर्य है। परिचय न होने पर भी मेरे लिए पहले ही से अपेक्षा किये बैठी थीं। इतने पर भी अन्नदा योग-बल में विश्वास नहीं करता। उससे कहूँ तो शायद वह इस बात को दिल्लगी में ही उड़ा दे। (भोजन करना)

रमा०—(स्वगत) लड़का क्या है सोने का चाँद है। देखने में जैसा सुन्दर है वैसी ही मधुर बोली है। मुझको पहले ही माईजी कहा। युक्त प्रदेश से आई हूँ, मालूम होता है इसी से माँ नहीं, माईजी सम्बोधन किया है। (प्रकाश्य) अरे, कुछ भी नहीं खाया!

आशु०—मुझमें जितना सामर्थ्य है, उससे कुछ अधिक ही खाया है।

रमा०—अच्छा तो बैठो,—मैं बुलाये लाती हूँ। (प्रस्थान)

आशु०—श्याम बाबू ने कहा था कि माईजी, कुमारी लड़की के द्वारा, मन्त्र का फल कहलाती हैं। वशीकरण विद्या पर मेरा कुछ विश्वास उत्पन्न हुआ है। इतने ही थोड़े समय में, माईजी के मातृस्नेह से, मेरा चित्त आर्द्र हुआ

जा रहा है। मेरे माँ नहीं है, पर मालूम होता है जैसे मुझे माँ मिल गई हो। कौन जाने यह किस मन्त्र-बल से हुआ है! माईजी ने स्नेह-भरी दृष्टि से मेरे समग्र शरीर और मन को अभिषिक्त-सा कर दिया है। प्रथम भेंट में ही इन्होंने मुझे अपना पुत्र मान लिया है, यह मानों पूर्व-जन्म के किसी सम्बन्ध का स्मारक है।

(अनुपमसुन्दरी के साथ रमासुन्दरी का प्रवेश)

आशु०—(स्वगत) अहा! बड़ा ही सुन्दर रूप है! यह तो माईजी की मूर्त्तिमती वशीकरण विद्या है। इसके मुँह से कोई मन्त्र भी विफल नहीं हो सकता।

रमा०—जाओ बेटी, लजाओ मत। वे जो पूछें उसका उत्तर दो।

आशु०—आप लज्जा न करें। माईजी मुझ पर जैसा अनुग्रह दिखा रही है, वैसे ही आत्मीय की भाँति आप भी मुझे देखें। (•मन में) कन्या बड़ी लजीली है! मेरी बात सुनकर लज्जा से और भी सिमट गई।

रमा०—बेटा, तुम्हें जो कुछ पूछना हो, इससे पूछो।

आशु०—आपका किस-किस विद्या में अधिकार है, यह मैं जानना चाहता हूँ।

रमा०—उम्र थोड़ी है, विद्या होगी ही कितनी अधिक? तो भी—

आशु०—अल्प भले ही हो, पर हमारे सदृश लोगों के लिए तो यथेष्ट होगी।

रमा०—(स्वगत) विद्या का कुछ परिचय न पाकर भी जब इतना सन्तुष्ट है तब साफ़ ज़ाहिर होता है कि इसने लड़की को पसन्द किया है। ईश्वर ने बड़ी कृपा की। बड़ी चिन्ता थी। (प्रकाश्य) बेटा अनुपम, एक गीत तो गाओ।

आशु०—गीत! यह तो मेरी आशा से बाहर की बात है। शायद आप पहले ही से जानती हैं कि गान से बढ़कर मैं कुछ भी पसन्द नहीं करता। (स्वगत) अन्नदा बड़ा ही शक्की है। आज वह रहता तो योग-बल को प्रत्यक्ष देख लेता। (प्रकट रूप से अनुपम के प्रति) आपने एक ही दिन में अपने सद्भाव से मुझे चिरऋणी बना लिया—यदि आप कुछ गाना सुनावें तब तो मुझे अपने हाथ बिका ही समझिए।

(अनुपम का गाना)

हे नाथ! आपसे मैं, कैसे करूँ निवेदन—
करना मैं चाहता हूँ, हिय-प्राण-मन समर्पन ॥हे नाथ०॥
करके दया पधारो, ख़ुद ही मेरे हृदय में।
जो कुछ यहाँ हो ले लो, यह प्राण-मन-हृदय-तन ॥ हे नाथ०॥
याँ सिर्फ़ धूल ही है, बे-मोल राख मिट्टी,—
सुस्पर्श देके पारस उसको करो अतुल धन ॥ हे नाथ०॥
गौरव से आप ही के गौरव तब होगा मेरा।
हिय-प्राण-मन करूँगा चरणों में तव समर्पन ॥हे नाथ०॥

आशु०—(स्वगत) अब मन्त्र की जरूरत नहीं। वशीकरण में अब बाक़ी ही क्या रहा ! कन्या तो साक्षात् देव-कन्या है ! (प्रकाश्य) माईजी !

रमा०—हाँ बेटा।

आशु०—आज से आप मुझे अपना पुत्र समझें। ऐसा मधुर सुधा-सङ्गीत सुनने के अधिकार से मुझे वञ्चित न करें। मुझे जो मिल गया, उसी को मैंने परमलाभ समझा। मन्त्र-तन्त्र की बात तो भूल ही गया हूँ। अब समझता हूँ कि मन्त्र की कोई आवश्यकता नहीं।

रमा०—ऐसी बात मत कहो। मन्त्र की आवश्यकता तो है ही। नहीं तो शास्त्र में—

आशु०—यह बात सही है। मैं मन्त्र को अग्राह्य नहीं करता। मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि मन्त्र पढ़ने ही से कुछ मन वश में नहीं होता; गान की मोहिनी शक्ति के आगे कुछ नहीं सुहाता। (मन में) लड़की फिर लज्जा से सिमट गई। बड़ी लजीली है।

रमा०—(स्वगत) लड़का बहुत अच्छा है। किन्तु इसमें सङ्कोच कुछ कम मालूम होता है। मन को वश में करने की बात सास के सामने न कहना ही अच्छा था।

आशु०—आप नाराज़ न हों, मेरे मन में जो आता है कह डालता हूँ। इसके बाद—

रमा०—यह बातें अभी रहने दो। पहले—

आशु०—मैंने कहा था कि गान से मन वश में होता है, सो वह भी तो शब्द का ही सामर्थ्य है। मन के साथ यदि उसका सम्बन्ध है तो मन्त्र की शब्द-शक्ति को कैसे न मानूँगा?

रमा०—ठीक है, मन्त्र मानना ही अच्छा है।

आशु०—(उत्साह-पूर्वक) आपके आगे ये बातें कहना मेरे लिए धृष्टता है। शब्द-शक्ति के साथ आत्मा का जो एक गूढ़ सम्बन्ध है, उसका स्वरूप निरूपण करना कठिन है। तर्कालङ्कार महाशय इसे अनिर्वचनीय कहते हैं। शास्त्र जो शब्द को ब्रह्म कहता है, उसका कारण क्या है? यह नहीं कि ब्रह्म ही शब्द है या शब्द ही ब्रह्म है—किन्तु ब्रह्म की व्यावहारिक सत्ता के भीतर उसका निकटतम स्वरूप शब्द ही है। (अनुपमसुन्दरी से) आपने तो इन बातों की आलोचना कई बार की होगी। क्या आप इस बात को नहीं मानतीं कि रूप-रस-गन्ध-स्पर्श की अपेक्षा शब्द ही मानों हमारी आत्मा का अव्यवहित प्रत्यक्ष विषय है? इसी लिए एक आत्मा के साथ अन्य आत्मा के मिलने का प्रधान साधन शब्द है। आप क्या कहती हैं? (स्वगत) लड़की बड़ी लज्जावती है।

रमा०—बेटा, जो पूछते हैं। उसका जवाब दो। तुम इतनी विद्या पढ़कर भी इस बात का उत्तर नहीं दे सकती!—आज पहली मुलाक़ात है न, इसी से इतनी लजाती है। यह मत समझो कि यह कुछ पढ़ी-लिखी नहीं है।

आशु०—इसकी विद्या की उज्ज्वलता तो इसके मुख की कान्ति ही से झलकती है। मैं कुछ भी सन्देह नहीं करता।

रमा०—बेटी अनुपम, तुम उस कमरे में जाओ। (अनुपम का प्रस्थान) देखो बाबू, लड़की का बाप नहीं है। सब बातें मुझे ही कहनी पड़ती हैं। मन में कुछ और न समझना।

आशु०—क्या समझूँगा! आप यह क्या कहती हैं? मैं आप की ही बातें सुनने को आया था। वाचाल की भाँति मैं कितनी ही बातें बक गया। मुझे बालक जानकर क्षमा कीजिएगा।

रमा०—अगर तुम्हारी राय हो तो कोई दिन स्थिर किया जाय।

आशु०—(स्वगत) मैंने सोचा था कि आज ही सब तय हो जायगा; किन्तु आज बृहस्पतिवार है, इससे मालूम होता है तय नहीं हुआ। (प्रकाश्य) अच्छा, यही रविवार नियत हो तो क्या हर्ज है?

रमा०—कोई हर्ज नहीं। आज गुरुवार है, बीच में सिर्फ़ दो ही दिन और पड़ेंगे।

आशु०—इस के लिए क्या बहुत वस्तुएँ इकट्ठी करनी पड़ेंगी?

रमा०—हाँ, यथासाध्य करना ही होगा। इसके सिवा पत्रा देखकर शुभ मुहूर्त्त भी देखना होगा।

आशु०—अच्छा! तो शुभ दिन भी देखना होगा! असल बात यह है कि जल्दी होनी चाहिए। मेरा जैसा

विशेष आग्रह है उससे तो यही जी चाहता है, कि काल करै सो आज कर —

रमा० - मेरा भी ऐसा ही इरादा है। मैं भी व्यर्थ विलम्ब नहीं करना चाहती। इसी अगहन में हो जायगा। लड़की की उम्र भी ब्याहने योग्य हो गई है, अब झटपट यह काम कर लेना ही ठीक है।

आशु०—इसका ब्याह हो जाने पर—

रमा०—हाँ, तब मैं फिर काशी लौट जाऊँगी।

आशु०—तो इसके पहले ही हमको—

रमा०—सब ठीक करना होगा।

आशु०—अच्छा तो मुहूर्त्त का निश्चय कीजिए।

रमा०—अब तुम राज़ी हो न?

आशु०—यदि राज़ी नहीं हूँ तो यहाँ आया ही क्यों? क्या मैं आपके पास परिहास करने आया हूँ! मेरा वैसा स्वभाव नहीं। मैं आजकल के नवयुवकों की भाँति इन बातों को तमाशा नहीं समझता।

रमा०—तुम्हारी राय अब बदलेगी तो नहीं?

आशु०—कभी नहीं, आपका पैर छूकर कहता हूँ। आपसे जो कुछ लेना है वह लेकर ही निश्चिंत हूँगा।

रमा०—लेन-देन की कोई बात हुई हो नहीं!

आशु०—आप क्या चाहती हैं, कहिए।

रमा०—मैं क्या चाहूँगी! तुम क्या चाहते हो सो कहो।

आशु०—मैं सिर्फ़ विद्या चाहता हूँ और कुछ नहीं !

रमा०—(स्वगत) सचमुच ही लड़का निर्लज्ज है ! छि: छि: 'विद्या-सुन्दर' की चर्चा मेरे सामने क्यों की ! मेरी अनुपम को ही विद्या कहा है न ! (प्रकाश्य) पानपत्र* के बारे में क्या कहते हो ?

आशु०—(स्वगत) पानपत्र ! देखता हूँ, इसके सभी कार्य शाक्तमत के अनुसार चल रहे हैं। इधर कुमरिका, इस पर फिर पानपत्र ! यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती। (प्रकाश्य) आप इसकी चिन्ता न करें। जिस काम का जो अङ्ग है वह करना ही होता है—किन्तु पानपत्र की बात मुझसे न होगी।

रमा०—तुम आजकल के लड़के हो, तुम इस व्यवहार को असभ्यता-पूर्ण समझते हो। किन्तु मैं तो उसमें कोई दोष नहीं देखती—

आशु०—आप उसमें कोई दोष नहीं देखतीं ? आप क्या कहती हैं ?

रमा०—अच्छा पानपत्र की बात जाने दो। इसके लिए कोई काम नहीं रुकेगा। ब्याह की बात तो पक्की हो गई न ?

आशु०—किसके ब्याह की !

---

* बङ्गाल में दहेज़ के चिट्ठे को 'पानपत्र' कहते हैं। कपड़ा, गहना, रुपया आदि जो वरपक्ष को दिया जाता है वह इसमें दर्ज रहता है। बातचीत पक्की होने पर वर-पक्ष को यह 'पत्र' और 'पान' दिया जाता है इसी से इसको 'पानपत्र' कहते हैं।

रमा०—तुमने तो मुझे एकदम चुप कर दिया बाबू! इतनी देर तक बातचीत होने के बाद पूछते हो, किसका ब्याह! तुम्हारे ही ब्याह की बात तो हो रही थी—केवल पानपत्र की बात सुनते ही तुम चौंक पड़े हो। अच्छा पानपत्र न होगा तो न सही।

आशु०—(हतबुद्धि की तरह) अरे! हाँ, हाँ, समझ गया। वही बात हो रही थी! (स्वगत) ओफ़! भारी भूल हो गई। बिना समझे-बूझे बिलकुल उलझन में पड़ गया हूँ। अब क्या करूँ! (प्रकाश्य) किन्तु इतनी जल्दी क्या है, और किसी दिन इन बातों का निश्चय हो जायगा।

रमा०—निश्चय होने में अब कौन सी बात बाक़ी रह गई? सब बातें पक्की कर ही चुके हो। इससे बढ़कर अब और किसी बात का क्या निश्चय होगा? शीघ्रता तो तुम्हीं कर रहे थे। तुमने इसी रविवार को दिन भी स्थिर करना चाहा था!

आशु०—हाँ, कहा तो था।

रमा०—तुमने देखा-सुनी करनी चाही, इसलिए मैंने लड़की को लाकर तुम्हारे सामने हाज़िर कर दिया। उसका गाना भी तुमने सुन लिया। अब यदि तुम पानपत्र की बात सुनकर मुँह फेर लो तब तो मैं किसी के सामने मुँह दिखलाने योग्य न रहूँगी। और, लोग तुम्हीं को क्या कहेंगे! भले घर की लड़की के साथ ऐसा व्यवहार करना क्या अच्छा है! मेरी अनुपम ने तुम्हारा क्या अपराध किया था जो—(रोना)

(अनुपमसुन्दरी का शीघ्र प्रवेश)

अनुपम०—माँ, क्या हुआ है जो इस तरह रो रही हो !

आशु०—(स्वगत) हा सर्वनाश ! नहीं जानता, मुझे ये क्या समझेंगी। (प्रकाश्य) कुछ नहीं हुआ है। मैं अभी सब ठीक किये देता हूँ। आप लोग रोवें नहीं। इससे शुभ-कर्म्म में अमङ्गल होता है। (रमा के प्रति) आप दिन स्थिर कर दीजिए, मुझे उसमें कोई उज्र न होगा।

रमा०—यदि वही दिन अच्छा हो जो तुमने कहा था तो इसी रविवार को हो जाय। मुझे धूमधाम से कोई काम नहीं। तुम्हारा मत स्थिर रहे, इसी में कल्याण है।

आशु०—आप ऐसी बात न कहें। मेरे मन में कभी उलट-फेर होने का नहीं।

रमा०—मेरे पैर छूकर तो तुमने यह बात भी कही थी, किन्तु दस मिनट बीतते न बीतते एक पानपत्र की बात सुनकर ही तुम्हारा मत बदल गया।

आशु०—यह ठीक है। पानपत्र को मैं कभी मन से पसन्द नहीं करता—

रमा०—क्यों ?

आशु०—मैं ठीक नहीं कह सकता—न जाने वह मुझे कैसा जान पड़ता है—न मालूम पानपत्र—कौन जाने वह बात ही कैसी—एकाएक सुनते ही जैसे—हाँ, इस मकान का नम्बर तो बतलाइए।

रमा०—इसी से तुम इतने सोच में पड़े हो ! मैं तुमको ठगती नहीं हूँ ! मैं ही उनचास नम्बर के मकान में थी। कल वहाँ से इस बाईस नम्बर के मकान में आई हूँ। तुम्हारे मन में कुछ सन्देह हो तो वहाँ जाकर दर्याफ़्त कर सकते हो।

आशु०—(स्वगत) ओफ़ ! मैंने बड़ी भारी भूल की है ! जो हो, अब बचने के लिए एक उपाय मिल गया है। अन्नदा को यहाँ ले आने ही से सारा बखेड़ा मिट जायगा। अन्नदा का भाग्य अच्छा है। कभी-कभी जी में आता है कि इस भूल को अन्त तक बनी रहने दूँ तो बुरा नहीं।

रमा०—क्यों बाबू, किस चिन्ता में पड़े हो ? हम अच्छे घराने की हैं–तुमको ठगने के लिए पश्चिम से यहाँ नहीं आई हैं।

आशु०—यह न कहिए। मेरे मन में किसी बात का सन्देह नहीं। अब मैं जाता हूँ- एक घण्टे के भीतर ही फिर लौट आऊँगा। आज ही आपका सन्तोषप्रद प्रबन्ध अवश्य करूँगा। यह बात मैं आपके पैर छूकर, सौगन्द खाकर, कहता हूँ।

रमा०—बाबू, सौगन्द का क्या काम है। पैर छूकर एक बार और भी तो तुमने सौगन्द खाई थी।

आशु०—अच्छा, मैं अपने इष्टदेव की शपथ करके जाता हूँ। दिन भर के भीतर ही सब पक्का करके तब कोई काम करूँगा।

रमा०—(स्वगत) लड़के की बातचीत तो बड़ी अच्छी है, किन्तु उसके मन की बात नहीं जानी जाती। किसी बात में

कभी ज़ोर देता है, कभी ढील दिखलाता है, फिर भी मुँह देखने से इस पर अविश्वास नहीं होता।

आशु०- अच्छा, अब आज्ञा हो तो जाऊँ।

रमा०—अच्छा जाओ। (प्रणाम करके आशुतोष का प्रस्थान)

पाँचवाँ अङ्क

अन्नदा०—(स्वगत) मामला क्या है, कुछ समझ में नहीं आता। घटक की बात सुनकर मैं कन्या देखने को आया। जिसने भेंट की है, वह उम्र से तो कभी कन्या की माँ नहीं जान पड़ती। चेहरे से मालूम होता है जैसे स्वर्ग की अप्सरा हो, यद्यपि मैंने कभी अप्सरा का स्वरूप नहीं देखा। शेकहैन्ड करने को ज्योंही मैंने हाथ बढ़ाया त्योंही उसने झट कौड़ी बँधा हुआ एक लाल डोरा मेरे हाथ में बाँध दिया। और कोई होता तो मैं कुछ कहे बिना न रहता, किन्तु उसके अत्यन्त मनोहर रूप को देखकर मैं चुप हो रहा, कुछ बोलने का साहस न हुआ। किन्तु यह किस देश का रस्म-रिवाज है, मैं कुछ भी नहीं जानता।

(माईजी का प्रवेश)

माईजी—(स्वगत) बहुत ढूँढ़ने पर तुम आज मिले हो। पहले गुरुजी के दिये हुए वशीकरण मन्त्र का प्रयोग कर लूँ तब अपना परिचय दूँगी। (अन्नदा के मस्तक में नरमुण्ड छुलाकर) कहो, हुरलिङ्।

अन्नदा०—हुरलिङ् ।

माईजी (अन्नदा के गले में गुड़हल के फूलों की माला पहनाकर) बोलो—कुड़बं, कड़बं, कूड़ाम् !

अन्नदा०—(स्वगत) छिः छिः, हास्य रस का विकट नमूना बन गया हूँ। एक तो मेरे कोट के ऊपर गुड़हल की माला, उस पर फिर इन अद्भुत शब्दों का उच्चारण !

माईजी—चुप क्यों हो रहे ?

अन्नदा०—कहता हूँ। क्या कहने को कहा था, फिर कहिए।

माईजी—कुड़बं, कड़बं, कूड़ाम् !

अन्नदा०—कुड़बं, कड़बं, कूड़ाम्। (स्वगत) रिडिक्लौस !

माईजी— सिर नीचे झुकाओ। माथे में सेंदुर लगाना होगा।

अन्नदा०-सिन्दूर ! इस उम्र में क्या मुझे सिन्दूर शोभा देगा !

माईजी—सो मैं नहीं जानती, किन्तु यह लगाना ही पड़ेगा।

(अन्नदा के कपार में सेंदुर लेपना)

अन्नदा०—राम राम ! कपार में सेंदुर लेप दिया !

माईजी—बोलो वज्रयोगिन्यै नमः (अन्नदा का तदनुरूप कथन) प्रणाम करो (अन्नदा-कर्तृक प्रणाम) बोलो कुड़बे कड़वे नमः ! प्रणाम करो। बोलो, हुरलिङे घुरलिङे नमः ! फिर प्रणाम करो।

अन्नदा०—(स्वगत) प्रहसन क्रमशः जमता जा रहा है !

माईजी—लो वज्रयोगिनी माता की प्रसादी का यह वस्त्र-खण्ड माथे में बाँधो।

अन्नदा०—(स्वगत) क्या यह तूल का टुकड़ा सिर में बाँधना पड़ेगा ! क्रम से मामला गहरा होता जा रहा है। (प्रकाश्य) देखिए, इसे रहने दीजिए, मैं पगड़ी पहरने को राज़ी हूँ—यहाँ तक कि मामूली आदमी जो टोपी पहनते हैं, वह भी पहन सकता हूँ।

माईजी—यह पीछे होगा, अभी यह सिर में लपेटने दो।

अन्नदा०—लो, लपेटो।

माईजी—अब इस पीढ़े पर बैठो।

अन्नदा०—(स्वगत) बड़ी मुश्किल में डाला। मैं पायजामा पहने हूँ। क्या करूँ, किसी तरह बैठना ही होगा। (बैठना)

माईजी—आँखें मूँदो। कहो—पट्कारिणी, हठवारिणी, घटसारिणी, नटतारिणी त्रुं ! प्रणाम करो। (अन्नदा का वैसा ही करना) कुछ दिखाई देता है ?

अन्नदा०—कुछ नहीं।

माईजी—अच्छा तो पूरब मुँह होकर बैठो—दहने कान पर हाथ रक्खो। कहो—पट्कारिणी, हठवारिणी, घटसारिणी, नटतारिणी त्रुं। प्रणाम करो। अब कुछ सूझता है ?

अन्नदा०—कुछ भी नहीं।

माईजी—अच्छा, तो पीछे फिरकर बैठो। दोनों कानों पर दोनों हाथ रक्खो। कहो—पट्कारिणी, हठवारिणी, घटसारिणी, नटतारिणी त्रुं। कुछ देख पड़ा ?

अन्नदा०—पहले मुझे बतला दो कि दिखाई क्या देना चाहिए।

माईजी—एक गधा दिखाई देता है न ?

अन्नदा०—दिखाई तो दे रहा है, बहुत ही नज़दीक है।

माईजी—हाँ, तब तो मन्त्र फलित हुआ। उसकी पीठ पर—

अन्नदा०—उसकी पीठ पर एक आदमी को देख रहा हूँ।

माईजी—गधे के दोनों कान दोनों हाथों से पकड़े हुए—

अन्नदा०—ठीक कहती हो, ख़ूब कसकर पकड़े हुए है।

माईजी—एक सुन्दरी कन्या—

अन्नदा०—बड़ी ही सुन्दरी—

माईजी—ईशान कोण की ओर जा रही है—

अन्नदा०—दिग्भ्रम हो गया है—किस कोण में जा रही है, यह ठीक-ठीक नहीं कह सकता। किन्तु दौड़ी जा रही है। गधा हाँफ रहा है।

माईजी—दौड़ी जा रही है! तब तो और एक दफ़े—

अन्नदा०—नहीं, नहीं, दौड़कर क्यों जायगी। आपने किस तरह जाना स्थिर किया है, कहिए।

माईजी—एक बार आगे जाती है, और फिर पीछे हट आती है।

अन्नदा०—हाँ, यही हो रहा है! आगे जाती है और फिर पीछे हट आती है। गधे की जीभ बाहर निकल पड़ी है।

माईजी—अब ठीक हो गया। यही समय है। अरी मातङ्गिनी, मङ्गला, तुम सब आ जाओ!

(मङ्गल-गान और शङ्ख-ध्वनि करते-करते स्त्रियों का प्रवेश ।)

(अन्नदा के वाम भाग में माईजी का बैठना और उसके हाथ पर अन्नदा बाबू का हाथ रखना ।)

(स्त्रियों का गाना)

सखी धीरज धरो देखो, शकुन अच्छा दिखाता है ।
दया जब ईश की होती गया धन हाथ आता है ॥
जिसे तुम ढूँढ़ती-फिरती—न गिनकर कुछ परिश्रम को,
वही इस बार सोने का हिरन है मिल गया हमको ।
सभी मिल दौड़कर आओ, पकड़ लो घेर कर इसको,
फंसा कर प्रेम-फन्दे में चलो ले हौस हो जिसको ।
बेचारा है खड़ा कबसे पियासा दौड़कर आया,
किरन है पास लहराती, न पानी का दरश पाया ।
न छोड़ो अब दया करके, न फिर यह पास आवेगा,
ज़रा मुहलत मिली इसको तुरत यह भाग जावेगा ।
अगर कुछ अक्ल है भी तो कहाता जङ्गली ही है,
सुनाकर बाँसुरी इसको, भुला लो ख़ैर तब ही है ॥

अन्नदा०—जङ्गली होने पर भी कुछ अक्ल ज़रूर है । इसी से समझता हूँ कि अभी जिस जानवर का नाम लिया गया है वह सौभाग्यशाली मुझे छोड़ इस मण्डली में और कोई नहीं है । जैसा मीठा सुर है वैसा ही सरस गीत है । गले की भी निन्दा नहीं की जा सकती । अब गीत के रूपकालङ्कार को तोड़ डालिए और उसका स्पष्ट अर्थ सरल भाषा में मुझे कह

सुनाइए। मेरे विषय में आप क्या किया चाहती हैं? आप यह आशङ्का न करें कि मैं भाग जाऊँगा। आप लोगों द्वारा खदेड़े जाने पर भी मैं नहीं भागूँगा किन्तु मैं कहाँ आया, क्यों आया, कहाँ जाऊँगा—यह सब कठिन प्रश्न मनुष्य के मन में स्वभाव से ही उठ सकते हैं।

माईजी—क्या तुम कभी-कभी अपनी स्त्री का स्मरण करते हो?

अन्नदा०—करने से क्या लाभ होगा, केवल समय ही नष्ट होगा। उसके स्मरण से जो सुख होता उसकी अपेक्षा आपके दर्शन से कहीं बढ़कर आनन्द हुआ है।

माईजी—तुम्हारी स्त्री यदि तुम्हारा स्मरण करके समय नष्ट कर रही हो तो?

अन्नदा०—तो उसको मेरा यही उपदेश है कि अब और समय नष्ट न करे—या तो वह मुझको भूल जाय या शीघ्र ही दर्शन दे। क्योंकि समय बड़ा ही मूल्यवान् पदार्थ है!

माईजी—अच्छा, यही उपदेश शिरोधार्य है। मैं ही आपकी दासी मदनमोहिनी हूँ।

अन्नदा०—ईश्वर ने बचा लिया। मन में जिस भाव का उद्रेक हो रहा था उससे, तुम मेरी स्त्री न होतीं तो, गले में फाँसी डालकर मर जाना पड़ता। किन्तु अपने स्वामी के साथ इतना आडम्बर क्यों?

मदनमोहिनी—गुरुजी से मैंने जो वशीकरण मन्त्र सीखा

था, पहले उसका प्रयोग करके तब आपको अपना परिचय दिया है। अब आप मेरे हाथ से नहीं निकल सकते।

अन्नदा०—और भी किसी के ऊपर इस मन्त्र की परीक्षा की गई है ?

मदनमोहिनी—नहीं आप ही के लिए इतने दिन से इस मन्त्र को रख छोड़ा था। आज इसका अद्भुत प्रत्यक्ष फल पाकर गुरु के चरणों में मन ही मन शतबार प्रणाम करती हूँ। मन्त्र पर क्या आपको विश्वास नहीं हुआ ?

अन्नदा०—वशीकरण की बात को अस्वीकार नहीं कर सकता। अभी एक बार यह मन्त्र पढने ही से मैं तुम्हारे अधीन हो गया हूँ।

(दासियों का भोजन-सामग्री लाकर सामने रखना।)

अन्नदा०—यह भी वशीकरण का एक अङ्ग है। जङ्गली हिरन हो चाहे शहर का गधा, उसे वश में रखने के लिए यह बड़ी ही आवश्यक वस्तु है। (भोजन में प्रवृत्त होना)

(आशु बाबू का शीघ्र प्रवेश। मदनमोहिनी आदि का प्रस्थान।)

आशु०—अन्नदा बाबू मैं तो बेढब गोरख-धन्धे में फँस गया हूँ। वाह ! तुम तो नाना प्रकार के दिव्य भोजन छक रहे हो। तुम्हारा यह कैसा ठाट है ! (उच्चहास्य) मामला क्या है ? तलवार है, लाल कपड़ा है, गुड़हल के फूलों की माला है ! तुम्हारा बलिदान तो न होगा ?

अन्नदा०—हो गया।

आशु०—कैसे हुआ ?

अन्नदा०—यह फिर बतलाऊँगा। पहले तुम अपना हाल कहो।

आशु०—विवाह के लिए तुमने जिस कन्या को देखने की बात स्थिर की थी, वह उनचास नम्बर के मकान से एकाएक बाईस नम्बर के मकान में चली गई। इधर मैं कन्या की विधवा माता को माईजी समझकर निर्बोध की भाँति इस तरह बेधड़क बातचीत करता गया जिससे उन्होंने निश्चय कर लिया है कि मैं उनकी लड़की से ब्याह करने को राज़ी हूँ। अब तुम्हारे न जाने से काम न चलेगा !

अन्नदा०—लड़की कैसी है ?

आशु०—देवकन्या के सदृश।

अन्नदा०—हुआ करे, बहुविवाह मेरे मत के विरुद्ध है।

आशु०—यह क्या कहते हो ? उस दिन तो तुम्हीं ने मेरे साथ उतना शास्त्रार्थ किया था—

अन्नदा०—उस दिन की अपेक्षा आज बहुत अच्छी युक्ति मिल गई है।

आशु०—बिलकुल अखण्डनीय ?

अन्नदा०—हाँ, सर्वथा अखण्डनीय।

आशु०—कैसी युक्ति है, दिखाओ तो ?

अन्नदा०—दिखाता हूँ, ज़रा बैठो। (प्रस्थान और माईजी के साथ प्रवेश) यह मेरी स्त्री श्रीमती मदनमोहिनी देवी हैं।

आशु०—अयँ! यह तुम्हारी—आप हमारे अन्नदा बाबू की—बड़ा आश्चर्य है! तब तो हो हो नहीं सकता।

अन्नदा०—हो ही नहीं सकता, यह क्या कहते हो! एक बार हुआ था, फिर यह दुबारा हुआ। तुम कहते हो—हो नहीं सकता!

आशु०—नहीं, मैं यह नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि उस बाईस नम्बरवाली के लिए अब क्या करना होगा।

अन्नदा०—कुछ कठिन नहीं। सहज उपाय है।

आशु०—सुनूँ तो सही।

अन्नदा०—तुम उसके साथ ब्याह कर लो।

आशु०—क्या मैं सब त्याग दूँगा। हठयोग, प्राणायाम, मन्त्र-साधन—

अन्नदा०—डर क्या है, तुम जो-जो छोड़ोगे उनको मैं ग्रहण करूँगा। अच्छा यह बताओ, तुम्हारा वशीकरण कैसे हुआ?

आशु०—वह कुछ कम नहीं है। हँसी उड़ाने के लिए तुम्हें यही विषय हुआ!

अन्नदा०—अब हँसी उड़ाने की बात नहीं है।

आशु०—क्यों, इसका कारण?

अन्नदा०—मेरा भी तो वशीकरण हो गया है।

आशु०—तो अब जाता हूँ। एक घण्टे के भीतर ही लौट आने की प्रतिज्ञा कर आया हूँ। पक्की बात करके आऊँगा।